बुन्देली लोकगीतों में उपासना का स्वरूप

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

पी-एच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

1985
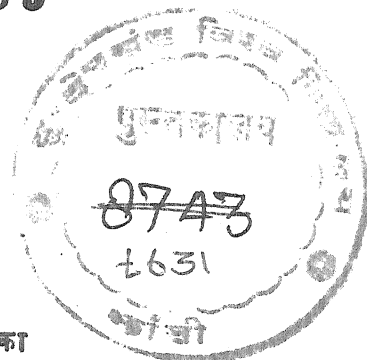
निर्देशिका
डॉ. (श्रीमती) यामिनी श्रीवास्तव
हिन्दी विभाग
डी. वी. कॉलेज, उरई (जालौन)

प्रस्तुतकर्त्री
सुरेखा जैन
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
के. एन. जी. इ. कॉलेज, कोंच (जालौन)

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती सुरेखा जैन ने, निर्धारित समयावधि के भीतर, पी-एच०डी० उपाधि हेतु, मेरे निर्देशन में रहकर " बुन्देली लोकगीतों में उपासना का स्वरूप [हिन्दी] विषय पर अपना शोध प्रबन्ध पूर्ण कर लिया है । इन्होंने दो सौ दिन की उपस्थिति के नियम का भी पालन किया है ।

अध्यवसाय पूर्वक किये हुये इस शोध कार्य की भाषा, विषय-सामग्री और प्रस्तुतीकरण की शैली से मैं पूर्ण रूपेण सन्तुष्ट हूँ । शोध छात्रा की मौलिक दृष्टि, चिन्तन और सार-संग्रही वृत्ति ने मुझे प्रभावित किया है । श्रीमती जैन ने लेखन और प्रस्तुत करने में विश्वविद्यालय के सभी आदेशों, नियमों का पालन किया है । अतः उक्त शोध-प्रबंध परीक्षण हेतु संस्तुत है ।

निर्देशिका

यामिनी श्रीवास्तव

डॉ० [श्रीमती] यामिनी श्रीवास्तव

हिन्दी विभाग

डी०वी०कॉलेज, उरई

[जालौन] उ०प्र०

दिनांक-
4.7.85

घोषणा - पत्र

मैं घोषित करती हूं कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मेरा अपना मौलिक कार्य है । यह प्रबन्ध अथवा इसकी सामग्री किसी भी भारतीय अथवा अन्य विश्वविद्यालय के परीक्षण संस्थान में पी-एच0डी0 या अन्य किसी उपाधि के लिये अभी तक प्रस्तुत नहीं की गई है ।

सुरेखा जैन
(सुरेखा जैन)

दिनांक -
4.7.85

प्रस्तावना-

महान देश भारत की महानता के यों तो अनेक आधार हैं लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार तो भारत की उत्कृष्ट सांस्कृतिक परम्परा ही है। भारतीय संस्कृति की विशिष्टता के मूल में भारतवर्ष की विशालता एवं उसकी अनेकरूपता है जो अनेक प्रान्तों, धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों तथा रीति-रिवाजों से निर्मित है परन्तु भारतीय संस्कृति की अनेकरूपता में भी एकता विद्यमान है।

आदिकाल से भारत का जन-जीवन धार्मिक भावनाओं से अनुप्राणित रहा है। इसका ज्ञान हमें तत्सम्बन्धित लोक साहित्य से सहज ही प्राप्त होता है। यह एक वास्तविकता है कि लोकसाहित्य का प्रासाद धर्म की सुदृढ़ नींव पर आधारित है। लोकसाहित्य, जैसा कि हिन्दी साहित्य कोष में स्पष्ट किया गया है- " वास्तव में लोकसाहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी साधना समाहित रहती है जिसमें लोकमानस प्रतिबिम्बित रहता है"- जो विशेष कर जनसामान्य की आस्थाओं, परम्पराओं एवं संस्कृति का बोधक है।

बुन्देली लोकसाहित्य पर गत लगभग 50 वर्ष से शोधकार्य हुआ तो है किन्तु लोकगीतों के प्रकाश में इस क्षेत्र के जनसामान्य की उपासना-वृत्ति, मान्यताओं और धर्म प्रवणता का सम्यक् आंकलन और सार्थक विवेचन करने का प्रयास नहीं किया गया है, इस दृष्टि से प्रस्तुत विषय पूर्ण मौलिक है।

लोकसाहित्य के अध्ययन के लिये लोक जीवन के विविध स्वरूपों को वैज्ञानिक और तात्विक ढंग से देखना होगा। लोकसाहित्य के अन्तर्गत लोकगीत एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रस्तुत शोध विषय का आधार बुन्देली लोकगीतों को रखा गया है जिसमें उपासना के स्वरूप का उद्घाटन शोध का प्रमुख उद्देश्य है। इससे अज्ञात तथ्यों एवं विस्मृत प्राय: रीति-रिवाजों और परम्पराओं का उद्घाटन होगा।

बुन्देली लोकगीतों में भजन सम्बन्धी लोकगीतों के अध्ययन से लोकजीवन के धार्मिक भावों, मान्यताओं, अलौकिकता के प्रति गहन श्रद्धा और समर्पण का पता चलता है। व्रतों का विधान, पर्वों के आयोजन की विधियाँ, वर्ष के प्रत्येक महीनों के धार्मिक अनुष्ठानों का विस्तृत स्वरूप लोकगीतों में विद्यमान है। लोकगीत में विशेष रूप से उपासना की दृष्टि से जिस वृत्ति का प्रचार-प्रसार कुछ अधिक ही देखने को मिलता है उसे एक सीमा तक अंधविश्वास भी कहा जा सकता है। किन्तु यह भी एक तथ्य है कि ऐसे अन्धविश्वास लोकसंस्कृति की अपनी एक विशिष्टता को अक्षुण्ण रखने में बड़ी सीमा तक सहायक हैं। इन लोकगीतों में आदिम युगीन

प्रतीक पूजकों की परम्परा में वृक्ष,पर्वतों की पूजा, वैदिक युगीन देवताओं,सूर्य,
चन्द्र,इन्द्र,आदि पर विकसित पौराणिक युगीन कर्मकाण्ड एवं संस्कार तथा
मध्ययुगीन भक्ति-परक श्रद्धा और समर्पण के अनेक भाव एक साथ विद्यमान हैं।
इनका अध्ययन,विश्लेषण अपेक्षित ही नहीं अपितु उपासना पद्धति को सजीव रूप में
अभिव्यक्त करने के लिये अनिवार्य भी है। शोध प्रबन्ध बुन्देली लोकगीतों में
उपासना के स्वरूप पर अनुसंधान की दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत करने का मेरा विनम्र
प्रयास किया है। इस दृष्टि से उन्हीं लोकगीतों को लिया गया है, जो परम्परा
संचित सम्प्रेषित हैं तथा जो लोक कण्ठों की मौखिक परम्परा से जीवित हैं, परन्तु
लोकगीतों को कालानुसार भूत,भविष्य और वर्तमान की विभाजक सीमा रेखाओं
में नहीं रखा जा सकता। परम्परा से आबद्ध होकर भी लोकगीतों की निर्मिति
में योग देने वाली स्पन्दनशील हृदय की सत्ता चिरनवीन ही प्रतीत होती है।
इनमें युगों की संचित अनुभूति या युग युग के इतिहास का सत्य अभिव्यक्त हुआ है।
बुन्देली लोक गीतों के संकलन द्वारा इनमें निहित उपासना के स्वरूप का सर्वांगीण
विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को 5 अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम
अध्याय के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड के भौगोलिक,राजनैतिक-ऐतिहासिक,सामाजिक एवं
साहित्यिक परिचय का समावेश किया गया है जिसमें बुन्देली मानव जीवन की
धार्मिक भावनाएँ,रीति-नीति एवं लोकमान्यताएँ प्रतिबिम्बित हुई हैं। द्वितीय
अध्याय में उपासना के स्वरूप का तात्विक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस
सन्दर्भ में भारतीय उपासना के विभिन्न उपादानों का वैदिक काल के पूर्व से लेकर
आधुनिक काल तक-अनुशीलन करना प्रधान उद्देश्य रहा है। तृतीय अध्याय के
प्रथम भाग में लोकगीतों की उत्पत्ति,भाषा,स्वरूप और वर्गीकरण पर प्रकाश
डाला गया है। द्वितीय भाग में भारतीय उपासना के स्वरूप के समग्र विवेचन को
पूर्णता प्रदान करने हेतु भाव,भक्ति,ज्ञान तथा वैराग्य दृष्टिकोणों के आधार पर
लोकगीतों में उपासना के स्वरूप का मूल्यांकन किया गया है। चतुर्थ अध्याय के
प्रमुख बिन्दु-बुन्देली लोक प्रचलन के विविध रूपों को सात भागों में विभक्त करके
बुन्देली लोकगीतों के रूपावरण में छिपी उपासना के स्वरूप का अत्यन्त विस्तार
से गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रथम भाग-शाक्त,शैव तथा
वैष्णवोपासना के अन्तर्गत देवी की अचरी,लंगुरिया,शंकर जी व गणेश जी के
भजन,राम और कृष्णपरक गीत तथा कार्तिक स्नान के गीतों का धार्मिक,सांस्कृतिक
सर्वेक्षण किया गया है। कार्तिक स्नान के गीत सम्पूर्ण बुन्देली लोकगीतों के
उपासनात्मक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखते हैं। द्वितीय भाग-
क्रीड़ात्मक उपासना गीतों के अन्तर्गत मामुलिया,सुआटा(नौरता) टेसू तथा झिंझिया
की लोकसंस्कृति के मौलिक अस्तित्व को विवेचित करने का प्रयास किया गया है।

तृतीय भाग प्रकृति उपासना के अन्तर्गत सूर्य, नदी, वृक्ष, तीर्थ आदि के गीतों पर आदिम युगीन प्रभाव को स्पष्टता से रेखांकित किया गया है । चतुर्थ भाग वीरोपासना के अन्तर्गत हरदौल की गाथा एवं कारसदेव की गोटों में वर्णित अलौकिक वीरता का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है । गोट केवल पुरुष वर्ग ही गा सकता है । पुरुषों ने स्वयं अपनी विशिष्ट गायन प्रतिभा और भक्तिपूर्ण हृदय को इन गोटों में उतारा है । गाथा एवं गोटों को लोकगीतों की कोटि में रखकर विचार किया गया है । पंचम भाग संस्कार गीतों में उपासना के अन्तर्गत जन्म, विवाह, मृत्यु के माध्यम से मानव की रागात्मिका वृत्ति का उद्घाटन या तथ्य दर्शन कराना मूल उद्देश्य रहा है । षष्ठम भाग बुन्देली लोक जीवन के अविभाज्य अंग पर्व, व्रत मेले के अन्तर्गत 20 पर्वों, व्रतों को लिया है, उनमें सन्निहित धार्मिक लौकिक अनुष्ठानों के मंगलमय दृष्टिकोण को अपने अध्ययन का आधार बनाया है । इनसे सम्बन्धित लोकगीतों की संख्या सर्वाधिक है । इन लोकगीतों के अजस्र प्रवाह में भारतीय संस्कृति तथा धर्म के आदर्श उपास्य पात्र राम-सीता, कृष्ण-राधा, शिव-पार्वती तथा गणेश आदि की उपासना एवं दार्शनिक चिन्तन का दिग्दर्शन कराया गया है । सप्तम भाग धार्मिक गीतों के अन्तर्गत ऐसे गीत हैं जिन्हें किसी श्रेणी विशेष में नहीं रखा जा सका है । इन गीतों में कुछ पौराणिक कोटि के है तथा कुछ भाव, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य मूलक गीतों को लोकमान्य बनाने के प्रयत्न में विशुद्ध लौकिक हैं । निर्गुणोपासना की अपेक्षा सगुणोपासना की विस्तृत सीमा भूमि में वैदिक, शैव शाक्त और वैष्णव मतानुयायियों की विविध उपासना पद्धतियों का समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है । स्त्रियों द्वारा गेय एवं लोक गीतों की श्रेणी में आने वाले भजनों का ही इनमें समावेश किया गया है । सभी भागों में वर्णित प्रत्येक देवी-देवताओं के उपासनात्मक स्वरूप की अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अवसर, प्रयोजन, पूजा-विधान, उपकरण, व्रत, परम्परा, धार्मिक-विश्वास तथा मान्यता नामक बिन्दुओं में स्थापित करके तथ्यान्वेषण का सर्वथा नवीन दृष्टिकोण अपनाया गया है ।

इस प्रकार द्वितीय अध्याय में विभिन्न उदाहरणों और लोकगीतों के माध्यम से इस यथार्थ को मूर्तिमान किया गया है कि बुन्देली उपासना और संस्कृति स्थानीय होते हुए भी विशद सीमाहीन, भारतीयता तथा मौलिकता से परिपूर्ण है । पंचम अध्याय को चार भागों में बाँटा गया है । प्रथम भाग में क्षेत्रीय ग्रामीण देवी-देवताओं की उपासना के प्रति बुन्देली जन-जातियों की आस्था, अन्धविश्वास धर्मभीरुता तथा स्थानीय संस्कृति के वस्तुपरक दर्शन होते हैं । धार्मिक भावभूमि पर आधारित परम्पराएँ एवं मान्यताएँ बुन्देली ग्राम्यजनों की रुचि तथा धारणाएँ प्रकट करने की क्षमता रखती है । अतः देवी-देवताओं पर उनके अगाध विश्वास समर्पण भावना और अडिग निर्भरता का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है ।

द्वितीय भाग में बताया गया है कि आदिम युग से प्रचलित भूत-प्रेत, चमत्कार, अंधविश्वास जादू-टोना, तंत्र-मंत्र तथा झाड़-फूंक आदि को बुन्देलखंड में लोकतत्व के रूप में जो मान्यता मिली है उसने बुन्देली लोक जीवन को समझने, परखने की पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है। इस तथ्य से भी परिचित कराया गया है कि किस प्रकार अशिक्षित ग्रामीणों ने अपने जीवन की अनुभूतियों से आप्लावित हो व्यापक रूप से चमत्कार विलक्षणता तथा रहस्यमयी जिज्ञासा पूर्ण वस्तुओं के दर्शन कराये हैं। सभ्य और शहरी भी इनकी संस्कृति से अछूते नहीं रह सके हैं। अतः भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना आदि के अध्ययन से यहाँ की पिछड़ी जातियों की संस्कृति का निरूपण हो सका है।

तृतीय और चतुर्थ भाग में कारसदेव एवं हरदौल जू के जीवन चरित्र को ऐतिहासिक तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में रखकर अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत विवरणा के निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उदार बुन्देली जनमानस ने बुन्देलखण्ड धरा के कण-कण की पूजा-उपासना की है। ये गीत भारतीय उपासना के सगुण-निर्गुण उभयरूपों में सगुणता के अधिक निकट प्रतीत होते हैं।

उपसंहार में निरूपित किया गया है कि ग्राम्य स्त्रियों के सरल मानस के निर्मल मन और श्रद्धा पूरित हृदय के दर्शन उन लोकगीतों में अधिक सहजता से होते हैं जो उपासना भाव के हैं। बुन्देली संस्कृति की सुगन्ध को सार्थकता ही नहीं अपितु सातत्य प्रदान करने में भी उपासना मूलक लोक गीतों का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रयास इन पर विहंग दृष्टि डालने का नहीं, इन उपासना गीतों की आत्मा के साक्षात्कार का किया गया है। प्रबन्ध लेखन के इस लोकसाहित्यक यज्ञ को सुखद और सफल बनाने में मेरी निर्देशिका डॉ० यामिनी श्रीवास्तव का महत्वपूर्ण योग-दान है। डॉ० हरवंश लाल शर्मा, श्री कृष्णानन्द जी गुप्त, श्री श्यामसुन्दर बादल, डॉ० गणेशीलाल बुधौलिया, श्री हरगोविन्द जी गुप्त, श्री रामचरण हयारण जी मित्र, श्री मोहनलाल गुप्त चातक, डॉ० ब्रजवासी लाल श्रीवास्तव, डॉ० प्रभाकान्त शुक्ल (वर्तमान उपकुलपति बुन्देलखण्ड वि०वि० झाँसी) डॉ० कान्ति कुमार जैन एवं डॉ० बलभद्र तिवारी आदि विद्वत गुरुजनों, बुन्देली गंगा के मानस हंसों ने मेरे प्रयासों के मस्तक पर वरदहस्त रखा है। उनके स्तुत्य सहयोग के लिये विनयावनत हूं।

अपनी पूज्य माँ, बहिनों, भाभियों, चाचियों, दादी, नानी, ताई से तो प्रतिदिन कुछ न कुछ नया प्राप्त करती ही रही हूँ। दूध वाली, बर्तन वाली और धोबिन बाई से भी महत्वपूर्ण योगदान मिला है। कारसदेव की गोटों का अध्ययन सबसे अधिक श्रमसाध्य कार्य सिद्ध हुआ। येह गोटें चबूतरे पर ही गाई जाती हैं। देवता के चबूतरे पर स्त्रियों का जाना निषिद्ध है। चबूतरे पर टेप-रिकार्डर रखवा कर गोटों के संकलन का विधिवत प्रयास इसलिये असफल हो गया कि टेप में मात्र "हूँ... हूँ..." या आरोह-अवरोह के स्वरों के अतिरिक्त शब्द समझ में ही नहीं आते थे। इस समस्या से उबारते हुए सोबरन सिंह यादव एवं मूलचन्द यादव ने गोटों

एवं कारसदेव के जीवन चरित्र के लेखन कार्य में महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। कारस देव की गोटों की प्रचुर समृद्ध सामग्री के संकलन के उपरान्त भी कुछ ही अंशों को दिया जा सका है। इसी तरह सुआटा, टेसू, झिंझिया, मामुलिया आदि गीतों के संकलन और अध्ययन हेतु बालिकाओं के एतद् सम्बन्धी उत्सवकारी खेलों में सम्मिलित होना पड़ा। इन गीतों के संकलन में सर्वाधिक सहयोग श्रीमती चमेली देवी एवं श्रीमती अनवार्ड देवी ने दिया है। देवी की अचरी नवरात्रि में एवं कार्तिक स्नान के गीत कार्तिक मास में स्नान हेतु सरोवर पर जाती हुई बुन्देली नारियों के कंठ से जैसे फूटे मैंने उनके होठों से अपने कान और कागज से कलम चिपका दी। कार्तिक स्नान गीत और देवी ~~और देवी~~ की अचरी संग्रह में सुमन उदेनियां, सावित्री श्रीवास्तव तथा कुसुमलता दातरे का सहयोग उपादेय सिद्ध हुआ। लांगुरिया संकलन में गिरजा देवी का, जन्म विवाह सम्बन्धी गीतों में सुधा जैन, पुष्पा जैन का तथा कमला भाई के गीतों के संग्रह में फूला कक्को एवं मालती कक्को से विशेष सहयोग मिला है। ग्रामीण देवी-देवताओं सम्बन्धी मंत्र-गीतों में मुनिया बिज्जी, बन्नाय वारो कक्को तथा मुन्नीलाल धोबी से विशेष सहायता मिली।

बुन्देलखण्ड मेरी जन्म भूमि है अतः यहां के लोकमानस और जनसाधारण से मैं मूल रूप से जुड़ी हुई हूं। बुन्देली लोक जीवन का एक अभिन्न अंग होने के नाते यहां के लोकगीतों में सन्निहित धार्मिक संस्कृति और उपासना के स्वरूप पर अनुसंधानात्मक अध्ययन मेरे लिये दुष्कर कार्य न था लेकिन जब इसकी गहराई में प्रविष्ट हुई तो उन्हीं काय अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिनसे लोकसाहित्य का कोई भी संकलनकर्ता अपरिचित नहीं।

अनेकानेक पुस्तकालयों का मंथन, विद्वज्जनों का मार्गदर्शन, वर्षों की शोध साधना, सैकड़ों बुन्देली जनों से साक्षात्कार और लोकगीतों का संचयन, हजारों किलोमीटर क्षेत्र का परिभ्रमण और लोकगीतों के मर्म के दर्शन करने का ध्यानमय प्रयास यद्यपि इस शोध प्रबन्ध के रूप में प्रकट हुआ है किन्तु चमक सौन्दर्य होते हुए भी जिस प्रकार स्वर्ण में सुगन्ध का अभाव और सुमनों में सुगन्ध होते हुए भी दीर्घ जीविता का अभाव रहता ही है। इसी प्रकार इस शोध प्रबन्ध में कुछ अभाव रह गये होंगे। कुछ त्रुटियां रह गई होंगी। इसमें जो अच्छा है वह निर्देशिका, विद्वज्जनों बुन्देली साहित्य से सम्पन्न पुस्तकालयों और ज्ञात-अज्ञात बुन्देली जनों के कारण है और जो भूलें, त्रुटियां एवं अपूर्णता है उसके लिये मेरी अल्पज्ञता उत्तरदायी है।

जिनका मार्गदर्शन संकलन सहयोग और निर्देशन प्राप्त हुआ है उन सभी के प्रति श्रद्धा और आभार का कुछ ऐसा भाव है मेरे मन में जिसे व्यक्त करने में शब्द समर्थ नहीं हो पा रहे हैं।

दिनांक
4.7.85

सुरेखा

प्रथम अध्याय

1.0. बुन्देलखण्ड का परिचय

1.1. भौगोलिक

1.2. राजनैतिक

1.3. सामाजिक

1.4. साहित्यिक

भौगोलिक स्थिति-

भारतवर्ष के मध्यभाग में स्थित प्रदेश को पहले चेदि, दशार्ण, जुझौति नाम से जाना जाता था। समय समय पर इसके नाम दशार्ण, वज्र, जेजाकभुक्ति, जुझौति, जुझारखण्ड तथा विन्ध्येलखण्ड भी रहे हैं[1]। बाद में बुन्देलों द्वारा अपनाये जाने पर सम्वत् 1288 विक्रमी के लगभग यह प्रदेश बुन्देलखण्ड कहलाया।

"विन्ध्य और नर्मदा, यमुना और चम्बल के अंचल में मध्यप्रदेश एवं उत्तर प्रदेश की सीमाओं की सन्धि में, साधारणतः वनश्री से परिपूर्ण, कृषिधान्य से संपूर्ण भू-खण्ड बुन्देलखण्ड के नाम से माना जाता है"[2]।

भौगोलिक स्थिति एवं सीमा-

पुरातत्वीय दृष्टि बुन्देलखण्ड के पर्वत, पठार और चट्टानी भू-भाग को कैम्ब्रियन युग की प्राचीनतम चट्टानों से निर्मित होने के कारण 40-45 करोड़ वर्ष से भी अधिक पुराना होना सिद्ध करती है। वैदिक, पौराणिक युग से लेकर वर्तमान काल तक अनेक उतार-चढ़ाव देखने के उपरान्त भी इसका भौगोलिक अस्तित्व अक्षुण्ण बना हुआ है। बुन्देलखण्ड का भू-भाग $21^{0}.25$ से $26^{0}.58$ उत्तरीय अक्षांश तथा $76^{0}.50$ से $81^{0}.56$ पूर्वी देशान्तरों के मध्य में स्थित है। समुद्रतल से इस भू-भाग की अधिकतम ऊँचाई 1392 मीटर तथा न्यूनतम ऊँचाई 152 मीटर है। उत्तर से दक्षिण तक अधिकतम लम्बाई 580 किलोमीटर के लगभग और पूर्व से पश्चिम तक अधिकतम चौड़ाई 450 किलोमीटर के लगभग है। बुन्देलखण्ड की राजनैतिक सीमाएं विभिन्न शासकों की शासन नीतियों के कारण सदैव परिवर्तित होती रही हैं। प्राकृतिक दृष्टि से पूर्व में टौंस और सोन नदियाँ, पश्चिम में बेतवा, सिन्ध और चम्बल नदियाँ, उत्तर में यमुना और गंगा नदियाँ, दक्षिण में नर्मदा और मालव आदि नदियाँ इसकी सीमाएं बनाती हैं। इसकी भाषात्मक सीमाएं कई प्रान्तों की भाषाओं के मिश्रण से निर्मित हैं। बुन्देलखण्ड के पूर्व में पूर्वी हिन्दी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी-उत्तर में पश्चिमी हिन्दी ब्रज और कन्नौजी- दक्षिण में मराठी तथा पश्चिम में राजस्थानी, मालवी भाषाओं से प्रभावित बुन्देली बोली जाती है। बुन्देलखण्ड के उत्तरी भाग में उत्तरप्रदेश के झाँसी, हमीरपुर, जालौन, बांदा तथा ललितपुर जिले एवं मध्यप्रदेश के छतरपुर, दतिया, टीकमगढ़, पन्ना, दमोह, सागर आदि जिले आते है। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश के ग्वालियर, भिण्ड, मुरैना, शिवपुरी, गुना, विदिशा, जबलपुर, सिवनी, नरसिंहपुर, छिन्दवाड़ा, मण्डला, बालाघाट, रायसेन, होशंगाबाद, बेतूल आदि भाग हैं। परन्तु इस भू-भाग में सामाजिक और सांस्कृतिक समानता के परिणाम स्वरूप भाषायी सीमाएं अपरिवर्तित रहीं।

1- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास-गोरेलाल तिवारी, पृष्ठ-1.

2- बुन्देलखण्ड के लोकगीत-रमाशंकर शुक्ल, एम०ए०, पृष्ठ-3-4.
वि०सं० 2010.

पर्वत, नदी, और वन-

बुन्देलखण्ड पहाड़ों का प्रदेश कहा जाता है। बाँदा, हमीरपुर, और जालौन के कुछ भाग को छोड़कर बुन्देलखण्ड की स्थिति पहाड़ों के सम्बन्ध में स्वीटजरलैण्ड की तरह है। यहाँ विन्ध्याचल,¹ पन्ना का पहाड़, भाण्डेर पहाड़ तथा तेंदुर पर्वत श्रेणियाँ मुख्य हैं। हंस पर्वत, स्वर्ण गिरि, सतपुड़ा, कवे पहाड़ तथा कामतानाथ भी यहाँ के प्रसिद्ध पर्वत हैं। ये पर्वत नुकीले न होकर सपाट हैं। विन्ध्याचल पर्वत समुद्र सतह से 2,800 से 4,000 फीट तक की ऊँचाई में है।

बुन्देलखण्ड में यमुना, टौंस, (सोन) नर्मदा, चम्बल, बेतवा, सिन्ध, धसान, केन, बगैन, कुवाड़, मैकुली, बेबास, उर्मिल, जामनी, पहुज, पार्वती आदि मुख्य नदियाँ हैं। ये नदियाँ चौड़ी और उथली हैं। इनका ढलान उत्तर की ओर होने के कारण ये उत्तर की ओर बहती हैं। नदियों के अतिरिक्त माता टीला, पारीछा, गोविन्द सागर, सिकुवा-ढिकुवा, ओरछा, दशानी तथा चम्बल बाँध हैं। तालाब तो प्रायः प्रत्येक गाँवों में हैं। बेतवा से प्रभावित बनारसीदास जी का कथन कि यदि बेतवा के सुन्दर स्थलों की रक्षा की गई तो उसका महत्व जर्मनी की राईन नदी से किसी हालत में कम न होगा, इसकी गरिमा को प्रमाणित करता है।

बुन्देलखण्ड में झाँसी का सिद्धवन, ओरछा का तुंगारण्य, करौंदी वन, मिरजापुर के समीप विन्ध्यवन, छतरपुर के समीप रोहरवन, सैंवढ़ा का कराई वन, अजयगढ़ का अजयवन, ग्वालियर का भूराखोहवन तथा नरवरगढ़ का अलवन आदि प्रसिद्ध हैं। इन वनों में साल, सागौन, तेन्दू, महुआ, खैर, बाँस, इमली, आम, ताड़, खजूर, बबूल, पेड़, अचार, बेर, सेमर, सीया, गूलर, कचनार, जामुन, बेल, पीपल, बरगद, नीम, धवा, शीशम, कैंथा, आँवला, जामुन, बेल, हर्र, बहेड़ा, ढाक, रियासा, बिल्ला, दूधी, करधई आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। इनसे कीमती लकड़ी, फल-फूल आदि प्राप्त होते हैं। आर्थिक दृष्टि से इन वनों का बहुत महत्व है।

ऋतु चक्र एवं जलवायु-

बुन्देलखण्ड की तीनों ऋतुएँ अच्छी होने से फसलें भी अच्छी होती हैं। दिसम्बर जनवरी में अधिक सर्दी 60^{0}-70^{0} एवं मई-जून में 80^{0}-90^{0} अधिक गर्मी तथा जुलाई अगस्त में 32 से 45 तक वर्षा होती है। यहाँ की वर्षा का औसत एक हजार मि0मी0 के लगभग है। मीठा एवं खारा जल बुन्देलखण्ड में प्रचुर मात्रा में मिलता है। यहाँ की जलवायु अच्छी, स्वास्थ्यप्रद और उष्णकटिबन्धीय है पर सर्वत्र समानता नहीं है।

1- पुराणों में विन्ध्याचल पर्वत को पर्वतों का मान्य कहा गया है-

महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमान ऋक्षवानपि।
विन्ध्यश्च पारिमात्रश्च सप्तै ते कुल-पर्वताः।
{महाभारत भीष्मपर्व अध्याय-9, श्लोक-11}

कृषि क्षेत्रफल एवं जनसंख्या-

बुन्देलखण्ड में खरीफ {स्यारी} तथा रबी {उन्हारी} की फसलें होती हैं। खरीफ के अन्तर्गत-धान, तिल्ली, उरद, मूंग, मोंठ, बाजरा, ज्वार, कोदों, राली, कुटकी, बलारा समाकाकुन आदि तथा रबी के अन्तर्गत-गेहूं, चना आदि के अन्नाज्नों का उत्पादन होता है। कपास, सन, गन्ना, सिंघाड़ा के अतिरिक्त हरी सब्जियां, मसाले, फल-फूल की भी पैदावार अच्छी होती है। यहां पानी एवं सिंचाई साधनों की बहुत कमी है। नदियां, नहरों एवं कुंओं से ही सिंचाई होती है। यहां का मुख्य धन्धा कृषि के बाद पशुपालन है।

बुन्देलखण्ड का क्षेत्रफल लगभग 1,28000 वर्ग किलोमीटर है। जिसमें से उत्तरप्रदेश के पांचों जिलों का क्षेत्रफल 29,459 वर्ग किलोमीटर है। 1981 की जनगणना के अनुसार बुन्देलखण्ड की जनसंख्या ढाई करोड़ के लगभग है[1]।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-

प्राचीनकाल में बुन्देलखण्ड रामायण काल के पूर्व से बौद्धयुग तक भारत के 16 जनपदों में से एक "चेदि" नाम से विख्यात था। चेदि जनपद का अत्यधिक महत्व महाभारत काल में भी रहा क्योंकि चेदि नरेश शिशुपाल ने कौरवों की ओर से कृष्ण के विरुद्ध युद्ध लड़ा था। चेदि जनपद व चेदि राज्य के शासक और निवासी ही प्राचीन बुन्देलखण्ड के शासक और प्रजाजन हैं[2]। ई०पू० 243 के लगभग जबलपुर के पास तेवर में भी चेदि शासन था। मौर्यकाल में बुन्देलखण्ड कौशाम्बी प्रान्त में था। मौर्य शासकों में चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और अशोक प्रमुख थे। अशोक ने बुन्देलखण्ड में मठों और विहारों का निर्माण कराया था जिसके अवशेष यहां आज भी मिलते हैं। मौर्यों के पश्चात् शुंगवंशिओं ने 36 साल बुन्देलखण्ड पर राज्य किया। वाकाटकों के प्रवरराज विन्ध्यशक्ति ने सन् 225 में एवं गुप्तकाल के समुद्रगुप्त ने छठीं शती ईस्वी में बुन्देलखण्ड पर शासन किया। गुप्तकालीन वैभवपूर्ण बुन्देलखण्ड में लगभग इसी समय से प्रभावशाली कलचुरी शासकों का प्रादुर्भाव हुआ। स्कन्दगुप्त के समय से हूणों के आक्रमण भी प्रारम्भ हो गये थे। 40 वर्षों तक हूणों के राज्य करने के उपरान्त यशोधर्मन ने उन्हें पराजित किया। यशोधर्मन के पश्चात् हर्ष के समय में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड वैभवशाली राज्य बना। जिसका वर्णन चीनी यात्री ह्युएनसांग ने बड़े विस्तार से किया है।

1- सन् 1981 की जनगणना के अनुसार उत्तरप्रदेश के पांचों जिलों की जनसंख्या निम्नवत है-

{1} झांसी-- 11,37,031

{2} जालौन-- 9,86,238

{3} ललितपुर-- 5,77,648

{4} हमीरपुर-- 11,94,168

{5} बांदा-- 15,33,990

2- बुन्देली लोककथा-भाग-1, डॉ० बलभद्र तिवारी, प्रकाशन-बुन्देली पीठ, सागर विश्वविद्यालय, 1977।

3- विन्ध्यभूमि-डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ-43।

हर्ष के पश्चात् [सन् 647 से 1200 ई0 तक] बुन्देलखण्ड पर कलचुरियों और चन्देलों का विशेष प्रभुत्व रहा। अतः चन्देलकाल से पूर्व कलचुरी शासकों का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। कलचुरी वंश के संस्थापक महाराज कोक्कल ने जबलपुर के पास त्रिपुरी को अपनी राजधानी बनाया, अतएव यह वंश "त्रिपुरी के कलचुरी" से भी विख्यात है। प्राचीन काल में नर्मदा के शीर्ष स्थानीय प्रदेश से महानदी के शीर्ष स्थानीय प्रदेश का विस्तृत भूभाग चेदि जनपद के नाम से प्रसिद्ध था। मध्यकाल में इसे ही डहाल कहा जाने लगा। कोक्कल देव ने वीरता तथा बुद्धिमानी से चन्देलों की बढ़ती हुई ताकत से तुरन्त लाभ उठाने हेतु चन्देल राजकुमारी से विवाह किया। उसके बाद उसके पुत्र मुग्धतुंग ने राज्य विस्तार किया एवं अन्य सह पुत्रों ने रजवाड़े बनाये। रत्नपुर के कलचुरी इन्हीं से सम्बद्ध हैं[1]। मुग्धतुंग के बाद युवराज देव का उल्लेख मिलता है। अलबरूनी[2] ने डहाल, उसकी राजधानी तीउरी और राजा गांगेयदेव का वर्णन किया है। गांगेयदेव के पुत्र कर्णदेव [1042 से 1073] ने पूर्व में हुगली, उत्तर में अन्तर्वेद दक्षिण में महानदी वेणगंगा, ताप्ती तक साम्राज्य बढ़ाया। पर उसके पुत्र और नाती यशकर्ण और गयाकर्ण चन्देलों की बढ़ती शक्ति के कारण राज्य सुरक्षित न रख पाये और कलचुरी के अन्तिम शासकों क्रमशः नरसिंह जयसिंह और विजयसिंह को देवगिरि के राजा ने 1200 ईस्वी में अपने अधीन कर लिया।

चन्देल काल-

हर्षवर्धन के उपरान्त बुन्देलखण्ड के धसान नदी के पूर्व और विन्ध्याचल पर्वत के उत्तरपश्चिम में चन्देलों का शासन उत्तर में यमुना नदी और दक्षिण में केन नदी तक फैला हुआ था। चन्देलवंश के संस्थापक नन्नुकदेव थे। नन्नुक के पौत्र जेजा अथवा जयशक्ति थे जिसके नाम पर चन्देलों के राज्य का नाम जेजाक भुक्ति पड़ा[3]। इस काल का महत्वपूर्ण शासक यशोवर्धन था उसने चेदियों, मालवों, कोशलों आदि पड़ोसी को ~~अपनी राजधानी~~ राज्य को जीतकर कालिंजर के दुर्ग को जीता और महोबा को अपनी राजधानी बनाया। महमूद गजनवी, बंगाल के पाल नरेश, एवं परमार, गौड़ नरेशों ने भी चन्देल राज्य पर आक्रमण किये। धंग गंड विद्याधर और कीर्तिवर्मा चन्देलवंश के विशेष उल्लेखनीय राजा थे। कीर्तिवर्मा और मदन वर्मा के समय में बुन्देलखण्ड का विस्तार पश्चिम को और ग्वालियर राज्य की पश्चिमी सीमा को लांघकर राजपूताना तक, पूर्व में काशी तक तथा दक्षिण में मालवा तक फैल गया था। अन्तिम शासक परमर्दिदेव था। उसी के आश्रय में

1- विन्ध्यभूमि-डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ-38.

2- किताबुल हिन्द [1030 ईस्वी] अलबरूनी.

3- Contribution to the History of Bundelkhand-Smith, Vol.-I, Page-1-53.

बुन्देलखण्ड के दो वीर योद्धा आल्हा-ऊदल रहते थे। सन् 1182-83 में सिरसागढ़ में पृथ्वीराज चौहान और चन्देलों का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। चौहान ने कालिंजर को लूट लिया जिसे चन्देलों ने पुनः 1201 में अपने अधिकार में कर लिया परन्तु 1203 में कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसे जीत लिया। सन् 800 के आसपास से सन् 1390 तक 25 चन्देल शासकों ने बुन्देलखण्ड पर राज्य किया। चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड में वास्तुकला, मूर्तिकला का विकास हुआ तथा खजुराहो, अजयगढ़, कालिंजर, महोबा, दुधई, चांदपुर के दुर्ग और मंदिरों का भी निर्माण हुआ। बुन्देलखण्ड के कालिंजर किले को अपने अधीन करने हेतु सभी मुस्लिम शासक प्रयत्नशील रहे। इब्राहीम लोदी के शासन-काल में अफगान सरदार उससे असन्तुष्ट थे। फलतः जौनपुर और बिहार में अफगानों ने क्रमशः सरदार नासिर खाँ लोहानी एवं दरिया खाँ लोहानी की अध्यक्षता में विद्रोह कर दिया। अफगान सरदार दौलत खाँ और आलम खाँ भी इब्राहीम के विरुद्ध हो गये थे। इब्राहीम लोदी के बाद बाबर ने अफगानों को घाघरा के युद्ध में परास्त किया। यहीं से मुगलों का शासन प्रारम्भ होता है। सन् 1021 में महमूद गजनवी ने बुन्देलखण्ड में पहला आक्रमण किया और कालिंजर किले पर अधिकार कर लिया। मुगल शासक बाबर ने अफगानों को परास्त किया किया था परन्तु अफगानों की शक्ति समूल नष्ट नहीं हुई थी। बिहार में अफगान सरदार शेरखाँ अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। इन समस्त आक्रमणों का प्रभाव बुन्देलखण्ड पर भी पड़ा और बाबर के पुत्र हुमायूं ने बुन्देलखण्ड के कालिंजर किले पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया। 1532 में अफगान परास्त हुए लेकिन 1536 में शेर खाँ ने बिहार, बंगाल को जीतकर गौड़ो पर अपना अधिकार कर लिया। चौसा के युद्ध में भी अफगान विजयी हुए और 1540 में कन्नौज पर उन्होंने अपना कब्जा कर लिया। इस प्रकार अफगानों ने मुगलों के विरुद्ध राष्ट्रीय युद्ध छेड़ दिया और 1542 के लगभग अफगानों की सत्ता फिर से स्थापित हुई। लेकिन सन् 1544 में शेरशाह ने कालिंजर के किले पर कीर्तिसिंह के समय आक्रमण किया और उसे अपने अधिकार में कर लिया। सन् 1545 में शेर खाँ की मृत्यु के पश्चात् हुमायूं ने पुनः राज्य प्राप्त कर लिया। अकबर के शासनकाल 1564 में गोंडवाना की रानी दुर्गावती पर आसफखाँ ने आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। 1568 में अकबर ने कालिंजर दुर्ग को अधिकृत किया। जहांगीर और शाहजहां ने भी कालिंजर दुर्ग को अपने अधीन रखा। औरंगजेब के समय में बुन्देले अपनी शक्ति बढ़ा चुके थे लेकिन बुन्देला शासकों के पूर्व बुन्देलखण्ड पर गोंड शासकों का राज्य रहा। इनमें सबसे शक्तिशाली रानी दुर्गावती रही है। सन् 1633 में बुन्देला राजा जुझारसिंह ने गोंडवाना प्रेमशाह के चौरागढ़ पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। अन्तिम गोंड शासक शंकरशाह और रघुनाथशाह हुए। बुन्देलखण्ड पर अफगान और गोंडों का राज्य बहुत कम समय तक ही रहा। मुगल लम्बे अरसे, अकबर के शासनकाल से लेकर औरंगजेब के शासनकाल तक बुन्देलखण्ड की राजनीति में छाये रहे। मुगलों से बुन्देलों का भी निरन्तर विरोध चलता रहा फिर भी वे बुन्देलखण्ड को मुगलों से

नहीं बचा और बुन्देलखण्ड विभिन्न सूबेदारों द्वारा शासित होता रहा है। महमूद गजनवी के बाद वि०सं० 1304 में नसीरुद्दीन, वि०सं० 1407 में फीरोज तुगलक वि०सं० 1447 में नसीरुद्दीन महमूद तथा वि०सं० 1555 में सिकन्दर लोदी ने कालिंजर किले पर आधिपत्य किया और बुन्देलखण्ड पर राज्य किया। इसके बाद बुन्देलखण्ड के हुशंगाबाद और कालपी राज्य पर बहलोल लोदी तथा चन्देरी पर महमूद शाह ने राज्य किया। बहलोल लोदी के पश्चात् सिकन्दर का आक्रमण हुआ। इसने अपने भतीजे अजीम हुमायूँ से कालपी ले ली और उसे मुहम्मद खाँ लोदी को दे दिया। यहाँ से यह ग्वालियर की ओर वि०सं० 1547 में आया। इस समय भी मानसिंह तोमर का राज्य था"[1]।

बुन्देला काल-

बुन्देला हेमकरन ने सन् 1055 से 1071 तक उत्तरी भारत पर आक्रमण कर कब्जा कर लिया। उनके बाद उनके पुत्र वीरभद्र ने अगाम तातारियों को पराजित कर कालपी बुन्देल राज्य में मिलाकर बुन्देल राजवंश की स्थापना की परन्तु इस वंश के सोहनपाल बुन्देला शासन के सही संस्थापक माने गये हैं। इनके पश्चात् पृथ्वीराज, रामचन्द्र, मेदनीमल, अर्जुनदेव आदि ने वि०सं० 1494 से 1525 तक बुन्देला राज्य की स्थापना की। तदुपरान्त मलखानसिंह ने वि०सं० 1525 से 1558 तक यहाँ राज्य किया और ओरछा अपनी राजधानी बनाई। मलखानसिंह के बाद रुद्रप्रताप (सन् 1501), भारतीचन्द (सन् 1539), मधुकरशाह (सन् 1554) बुन्देलखण्ड के शासक बने। इनके बाद रामशाह शासक बने पर अक्षम रहे और वीरसिंह देव को शाहजादे सलीम ने बुन्देलखण्ड का शासक बनाया। अकबर के समय वीरसिंह देव ने (वि०सं० 1664) ओरछा पर अधिकार किया। इस प्रकार जहाँगीर के समय में प्राप्त बुन्देलखंड राज्य को शाहजहाँ के समय में वीरसिंह देव ने स्वतन्त्र घोषित कर दिया। बुन्देलों के छापामार रणकौशल के सामने अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ इनके बढ़ते साम्राज्य को दबाने में असफल रहे। वीरसिंह देव के उपरान्त इनके बड़े पुत्र जुझारसिंह को गद्दी दी गई एवं 11 भाईयों को जागीरें दी गईं। इनमें पहाड़सिंह को परच, नरहरदास को धामौनी, तुलसीदास को गढ़, बेनीदास को बैलपुर, कौंच, किशुनसिंह को देवराहा, बाघराज को गरोली और माधवसिंह को जगतपुर जागीर में दिये गये। परमानन्द को कोई जागीर नहीं दी गई और वे ओरछा में ही रहे। दीवान हरदौल जागीर रखते हुए भी ओरछा में रहे"[2]। जुझारसिंह के बाद देवीसिंह, पहाड़सिंह शासक रहे पर वे असफल रहे। औरंगजेब के समय पन्ना के चम्पतराय को ओरछा से यमुना तक की जागीर मिली। पर निरन्तर बुन्देलखण्ड को स्वतंत्र करने में प्रयत्नशील रहे। इनके बाद छत्रसाल ने औरंगजेब के दबाव के बाद भी मेहर बाँधा,

---

1- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास-गोरेलाल तिवारी, पृष्ठ-85, 86.
2- भारतीय-बुन्देल और उनका राजत्वकाल (विन्ध्यभूमि) पृष्ठ-52.

कालिंजर, सागर तथा भेलसा पर अपना अधिकार कर लिया । इनके समय में मराठों की शक्ति भी बढ़ रही थी । छत्रसाल के पश्चात् बुन्देलखण्ड के तीन भाग हुए- प्रथम भाग पन्ना, मऊ, गढ़ाकोटा, कालिंजर, शाहगढ़ हृदयशाह को, द्वितीय भाग जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, बिजावर, सरीला, भूरागढ़ और बांदा जगतराज को तथा तृतीय भाग कालपी, हटा, हृदयनगर, जालौन, गुरसराय, झांसी, गुना, गढ़ा कोटा और सागर बाजीराव पेशवा को मिला । बुन्देला राजाओं के गृहकलह के परिणामस्वरूप मराठों ने बुन्देलखण्ड पर अधिकार कर लिया परन्तु हिम्मत बहादुर के सहयोग से अंग्रेजों और मराठों के बीच युद्ध हुआ परन्तु वि०सं० 1875 तक बुन्देलखण्ड अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया ।

आधुनिक काल-

वि०सं० 1877 में बुन्देलखण्ड कमिश्नरी का निर्माण हुआ । वि०सं० 1892 में जालौन, हमीरपुर, बांदा के जिले पश्चिमोत्तर प्रदेश में और सागर मध्यप्रदेश में मिला दिया गया, जिसकी देखरेख आगरा से होती थी । वि०सं० 1906 में सागर, दमोह, जिलों को मिलाकर एक कमिश्नरी बना दी गई । जिसकी देखरेख झांसी से होती थी । कुछ दिनों बाद कमिश्नरी का कार्यालय झांसी से जबलपुर आ गया । वि०सं० 1899-1900 में सागर, दमोह जिलों में अंग्रेजों के खिलाफ बहुत बड़ा आन्दोलन हुआ किन्तु उन्होंने फूट डालने की नीति का आश्रय लेकर शीघ्र ही शान्ति की स्थापना कर ली[1]। बुन्देलखण्ड भारत के मध्य स्थित होने के परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण देश में विदेशी सत्ता की स्थापना की सुनिश्चितता के बाद ही विदेशी आक्रमणकारी यहाँ पहुंचने में सफल हो सके थे । सं० 1905 लार्ड डलहौजी के अंग्रेजी राज्य के गवर्नर बनते ही पुनः राज्य विद्रोह हुए और बुन्देलखण्ड में झांसी की रानी को हटाने के प्रयत्न प्रारम्भ हो गये । रानी ने उत्तरी बुन्देलखण्ड के विद्रोह को दबायापरन्तु दक्षिणी बुन्देलखण्ड के में सागर, दमोह, जबलपुर, बानपुर, कुरई और चन्देरी के विद्रोह भयंकर थे । अतः असफल रही । झांसी और कालपी के युद्ध में रानी और तात्या ने अंग्रेजों से टक्कर ली लेकिन अंग्रेज सफल हो गये । 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड अंग्रेजों के अधीन हो गया परन्तु प्रथम विश्व युद्ध के समय बुन्देलखण्ड वासियों ने पुनः रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद तथा योगेश चटर्जी के क्रान्तिकारी नेतृत्व में स्वतन्त्रता आन्दोलन छेड़ दिया । इस समय झांसी के परमानन्द जी, करतारसिंह, विष्णु गणेश पिंगले, दतिया के दीवान नाहरसिंह, बनियाधाना के कमकसिंह जू देव, सागर के वासुदेव राव सूबेदार आदि व्यक्तियों ने अंग्रेजी शासकों को एक बार फिर कंपित कर दिया"[2]। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति तक बुन्देलखण्ड वासियों की अविस्मरणीय भूमिका को विस्मृत नहीं किया जा सकता ।

1- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास- गोरेलाल तिवारी-पृष्ठ-75.

2- दैनिक मध्यदेश- भगवानदास माहौर, पृष्ठ-5। .

सामाजिक जीवन-

बुन्देलखण्ड का सामाजिक परिचय प्राप्त करने हेतु हमें इस प्रदेश की जाति, भाषा, धर्म, त्योहार, पर्व, मेले, सामाजिक रीतियां तथा दण्डविधान के अध्ययन की आवश्यकता है-

जातियां-

भारत में आर्यों के आगमन के पूर्व आदिम जातियां थीं । "वर्ण व्यवस्था" का सूत्रपात आर्यों और भारत की आदिवासी जातियों के परस्पर विरोधी रूप रंग के आधार पर हुआ[1]। बुन्देलखण्ड में भी आर्य-अनार्य संस्कृति के सम्मिश्रण से प्रभावित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियों का स्थान सुव्याप्त है । ब्राह्मणों में सनाढ्य, कन्नौजिया, जुझौतिया तथा सरवरिया, क्षत्रियों में- बुन्देला, बन्देल, चौहान, पवार, परमार, सोलंकी, सेंगर, तोमर, राजपूत, रघुवंशी आदि वैश्यों में- अग्रवाल, गहोई, ओमरे, परवार, शूद्रों तथा अन्य जातियों में-अहीर, चमार, कोरी, भंगी, कुर्मी, काछी, लोधी, कुम्हार, केवट, बसोर, माली, धोबी, ढीमर, नाई, सुनार, धोबी आदि जातियां इस प्रदेश में निवास करती हैं । ईसाई और मुसलमानों के अतिरिक्त गोंड़, भील, सौर, कोल तथा किरार आदिवासी जातियां भी यहां उल्लेखनीय हैं । ये सभी जातियां अपनी आजीविका हेतु समुचित व्यवसायों को अपनाये हुए हैं ।

भाषा-

बुन्देलखण्ड की बुन्देली भाषा बहुत ही कर्णप्रिय और रसभरी है । बुन्देली भाषा यहां के शिक्षित समाज से लेकर निरक्षर व्यक्ति तक गर्व से बोलते हैं । शहरों की अपेक्षा गांवों में बुन्देली भाषा का मूलरूप सुरक्षित है । यह बोली, अविरभाव, विनम्रता, लालित्य, लोच आदि में ब्रजभाषा से भी आगे है । कर्ण कटु शब्दों के अभाव के कारण ही यह बोलने सुनने में मधुर है । इस प्रदेश में सवा दो लाख के लगभग बुन्देली भाषा-भाषी हैं । बुन्देली के कई विभाग हैं-

शुद्ध बोली-

टीकमगढ़, सागर, दतिया, झांसी तथा आस-पास के इलाके में बोली जाती है।

खटोला-

पन्ना, छतरपुर, दमोह, जिले के दक्षिणी भाग में बोली जाती है ।

लोधनी-राठौरी-

उरई, जालौन, हमीरपुर के इलाकों में बोली जाती है ।

पंवारी-

दतिया, ग्वालियर, भाण्डेर की बोली है ।

बनाफरी-

पन्ना के अजयगढ़, धर्मपुर, बेरिगांरिहार और नौगांव की भाषा है ।

---

1. Hindu manners customs and ceremonies, J.A. Dubois- Oxford (1936) page-14.

कुण्डरी-

यह हमीरपुर,बांदा में बोली जाने वाली बघेली प्रभावित भाषा है।

निभटा-

बुन्देली बघेली मिश्रित बालान के आस-पास के क्षेत्र में बोली जाती है।

विभिन्न भाषाओं के सम्पर्क से तथा वर्णों के कोमलीकरण से विभिन्न स्थानों की बुन्देली के कारकों और विभक्तियों में परिवर्तन हुआ है। पर उसकी श्रुतिमधुरता में कोई अन्तर नहीं आया है। इस भाषा के गद्य में लोककथाएँ, लोकोक्तियाँ या मुहावरे तथा पद्य में पवाँरे और लोकगीत सम्पन्न हैं।

धार्मिक अवस्था-

बुन्देलखण्ड में धर्म के प्रति, दृढ़ आस्था है। महाभारत में उल्लेख है कि जो धारण करने की योग्यता रखता है, वही धर्म है। धर्म प्रजा का धारण करता है"[1]। बुन्देली जनजीवन धर्म के व्यापक,मौलिक एवं यथार्थ रूप को भले ही न समझ सकें परन्तु उनकी धार्मिक उदारता और धर्मानुकूल प्रवृत्तियों के कारण परम्परागत धार्मिक विधि-विधान,पूजा,अनुष्ठान आदि अन्धविश्वास की सीमा में समाविष्ट हो गये हैं। विशेषकर स्त्रियों में धर्मभावना का जागरूक स्वरूप प्राप्त होता है। वे महीने में दो-चार व्रत अवश्य करती हैं। उनमें वेद पुराण,धर्मशास्त्र के अनुसार व्रत-साधना तथा उपासना का स्वरूप तो परिलक्षित होता ही है लेकिन साथ ही सूर्य,चन्द्र,नदी,वृक्ष,पर्वत,तीर्थ इन्द्र,अग्नि,पवन,पशु-पक्षी आदि की भी देवरूप में पूजा का प्रचलन है। यहाँ भूत-प्रेतों,वृक्षों की पूजा एवं जादू-टोना, तंत्र-मंत्रों में विश्वास किया जाता है। बरगद, पीपल,तुलसी,नीम,आँवला,गाय,बैल,नाग,मोर,गरुड़,नीलकण्ठ आदि की पूजा सामान्य बात है। इनके अतिरिक्त शेष ग्रामीण देवी देवताओं की पूजा भी आर्य-अनार्य विधियों से होती है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पंचदेवोपासना [शिव,शक्ति,विष्णु, सूर्य,गणेश] तो होती ही है पर वैष्णव,शाक्त,शैव,रामानन्दी और कबीरपंथी मतावलम्बियों की भी कमी नहीं। राम-कृष्ण,शंकर,गणेश,हनुमान के साथ-साथ देवी के नौ रूपों की उपासना होती है। उनकी असंख्य अवतारों की पूजा के मूल में मात्र ईश्वरीय शक्ति की सर्वव्यापकता का भाव ही समाहित है। इस प्रकार उनकी उपासना में बहुदेववाद में एकेश्वरवाद की चरम अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है। "सब ईश्वरमय है"- बुन्देलखण्डवासियों की धर्म के प्रति इस गहन निष्ठा के परिणाम स्वरूप ही वे कंकड़ पत्थर पशु-पक्षी नदी पर्वत आदि की पूजा भगवान की पूजा के समान ही कर लेते हैं। डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार-"सभी धार्मिक अवस्थाओं के मूल में ईश्वर हैं जो न हिन्दू है, न ईसाई, न यहूदी है, न मुसलमान"[2]। बुन्देली जनमन ने सगुणोपासना को इसी भाव से अपनाया तथा विष्णु के अवतारों की भक्ति का प्रचार किया।

1- धारणाद धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताप्रजाः।
य स्याद धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥ [महाभारत शान्तिपर्व 109/11-12]

2- हमारी संस्कृति-डॉ० राधाकृष्णन्-पृष्ठ-51,
राजपाल एण्ड सन्स-1982.

प्रचार किया।

त्यौहार,पर्व,मेले-

बुन्देलखण्ड का लोकजीवन त्यौहार,पर्व मेलों की दृष्टि से बड़ा धनी रहा है। यहाँ का सम्पूर्ण जीवन त्यौहार,पर्व,मेले की धार्मिक भावना से स्पन्दित होता रहता है। इनकी बहुलता के कारण सप्ताह के निर्धारित सात दिनों में इनका समावेश नहीं हो पाता। यहाँ के लोग प्रत्येक दिन को एक त्यौहार,पर्व के रूप में सम्पन्न करते हैं। विशेष त्यौहार,पर्व ऋतुपरिवर्तन पर मनाये जाते हैं तथा विशाल मेलों के आयोजन किये जाते हैं। बुन्देलखण्ड में श्रावण,दशहरा,दिवाली,होली के त्यौहारों के अतिरिक्त कुछ ऐसे त्यौहार भी हैं, जो अन्य प्रदेशों में नहीं मनाये जाते। इन त्यौहार,पर्व मेलों के माध्यम से बुन्देलखण्ड के धार्मिक,सामाजिक तथा सांस्कृतिक अन्तश्चेतना के स्वरूप का उद्घाटन तथा परम्परा का निर्वाह होता है। अध्याय 4.06 के अन्तर्गत त्यौहार,पर्व का विस्तृत विवेचन किया गया है। प्रत्येक माह में सम्पन्न होने वाले व्रत,उत्सव त्यौहार,पर्वादि की सूची निम्नवत है-

क्रमांक	महीना	तिथि	व्रत,त्यौहार,पर्व	प्रयोजन,प्रवृत्ति
1-	चैत्र	कृष्ण प्रतिपदा	होली	ऋतु उत्सव एवं सांस्कृतिक परम्परा।
		शुक्ला प्रतिपदा -नवमी	नवरात्र	अनुष्ठान।
		शुक्ल तीज	गणगौर	सौभाग्य व्रत
		शुक्ल नवमी	रामनवमी	धार्मिक उत्सव
		पूर्णिमा	हनुमान जयन्ती	धार्मिक उत्सव
2-	वैशाख	शुक्ल तृतीय	अक्ती (अक्षय-तृतीया)	सांस्कृतिक परम्परा
3-	ज्येष्ठ	अमावस्या	वटसावित्री	सौभाग्य व्रत
		शुक्ल दशमी	गंगा दशहरा	धार्मिक भावना
		शुक्ल एकादशी	निर्जला एकादशी व्रत	मोक्ष कामना
4-	अषाढ़	शुक्ल एकादशी	हरिशयनी एकादशी व्रत	अनुष्ठान
		पूर्णिमा	गुरूपूर्णिमा	धार्मिक भावना
5-	श्रावण	शुक्ल तृतीय	हरियाली तीज (सावन तीज)	त्यौहार
		शुक्ल पंचमी	नागपंचमी	त्यौहार
		पूर्णिमा	रक्षाबन्धन	त्यौहार,सांस्कृतिक परम्परा
6-	भाद्रपद	कृष्ण तृतीय	कजली तीज	सौभाग्य व्रत
		कृष्ण चतुर्थी	गणेश चौथ	धार्मिक उत्सव

	कृष्ण अष्टमी	जन्माष्टमी	धार्मिक उत्सव
	कृष्ण		
	शुक्ल तृतीया	हरितालिका तीज	सौभाग्य व्रत
	शुक्ल पंचमी	ऋषि पंचमी	व्रत
	शुक्ल चतुर्दशी	अनन्त पंचमी चतुर्दशी व्रत	पौराणिक परम्परा
7-आश्विन	कृष्ण पक्ष	पितृपक्ष प्रारम्भ	पौराणिक परम्परा
	अमावस्या	पितृ विसर्जन	पौराणिक परम्परा
	शुक्ल प्रतिपदा-नवमी	नवरात्रि (शारदीय)	अनुष्ठान
	शुक्ल दशमी	विजया दशमी	त्यौहार
	पूर्णिमा	शरद पूर्णिमा	धार्मिक उत्सव
8-कार्तिक	कृष्ण चतुर्थी	करवा चौथ	सौभाग्याकांक्षा हेतु व्रत
	कृष्ण त्रयोदशी	धनतेरस	धार्मिक, सांस्कृतिक त्यौहार एवं परम्परा
	कृष्ण चतुर्दशी	नरक चौदस	धार्मिक सांस्कृतिक त्यौहार एवं परम्परा
	अमावस्या	दीपावली	लक्ष्मी पूजन
	शुक्ल प्रतिपदा	गोवर्धन (अन्नकूट)	कृषि सभ्यता की परम्परा
	शुक्ल द्वितीया	भाई दूज	सामाजिक-परम्परा
	शुक्ल नवमी	अक्षय नवमी	धार्मिक भावना
	शुक्ल एकादशी	हरिप्रबोधिनी व्रत	धार्मिक भावना
	पूर्णिमा (सम्पूर्ण मास)	स्नान पूर्णिमा	मोक्ष कामना
9-मार्गशीर्ष (अगहन)	कृष्ण अष्टमी	महाभैरव अष्टमी	धार्मिक भावना
10-पौष	शुक्ल त्रयोदशी	मकर संक्रान्ति	धार्मिक उत्सव
11-माघ	शुक्ल पंचमी	बसन्त पंचमी	त्यौहार
	सम्पूर्ण मास	माघ स्नान	मोक्ष कामना
12-फाल्गुन	कृष्ण चतुर्दशी	शिवरात्रि	मोक्ष कामना
	पूर्णिमा	होलिका दहन	ऋतु उत्सव एवं सांस्कृतिक परम्परा

बुन्देलखण्ड के "त्यौहार पर्व और मेले मानव जीवन के वे सुन्दर अवसर हैं जिनके आगमन से प्राणिमात्र अपनी आन्तरिक वेदनाओं को भूलकर खुशी में नाच उठता है, स्वयं को पूर्ण रूप से भुला देता है और अपनी सारी समस्याओं को भूलकर अलौकिक आनन्द में लीन हो जाता है"। किसी लेखक का उक्त कथन सत्य प्रतीत होता है।

सामाजिक रीतियाँ-

परम्परा प्रचलित रीतिरिवाजों से पृथक रहकर व्यक्ति पारिवारिक सामाजिक

जीवन के स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना नहीं कर सकता । उसका पारिवारिक जीवन जन्म से मृत्यु तक विभिन्न रीति-रिवाजों और संस्कारों से संचालित होता है । सामाजिक रीति रिवाजों सम्बन्धी लौकिक उपादानों से बुन्देलखण्ड का लोक-जीवन प्रतिबिम्बित होता है । यहाँ की सामाजिक रीतियों को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

1- संस्कार-जन्म, विवाह, मृत्यु-सम्बन्धी रीतियाँ ।
2- व्रत, पर्वोत्सव, त्यौहार सम्बन्धी रीतियाँ ।
3- जाति सम्बन्धी रीतियाँ
4- आचार, अनुष्ठान, रहन-सहन सम्बन्धी प्रथाएं, परम्पराएं और रीतियाँ ।

बुन्देलखण्ड की उक्त चारों प्रकार की सामाजिक रीतियाँ शास्त्रीय और लौकिक रीतियों के नियमों से आबद्ध हैं । शास्त्रीय रीतियों की अपेक्षा लौकिक रीतियों की यहाँ संख्या अधिक है । कुछ रीतियों का संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है-

जन्म से पूर्व 7 वें माह में सातें (चौक) जन्म पश्चात सोहर छठी, देवपूजन, जातकर्म, नामकरण, मुण्डन, अन्नप्राशन आदि जन्म संस्कार सम्बन्धी रीतियाँ यहाँ प्रचलित हैं । विवाह बिना कोई भी व्यक्ति न तो समाज में प्रतिष्ठा पा सकता है और न ही वह समाज का उपयोगी या उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य कर सकता है-[1] । वरीक्षा भात न्योतना, मण्डप छाना, तेल चढ़ाना, कुल देवी पूजन, गठबन्धन, भाँवर, विदाई, द्विरागमन आदि प्रमुख वैवाहिक रीतियों का यहाँ प्रचलन है । मृत्यु उपरान्त शवस्नान, अर्थी सज्जा, तिलांजलि, शवदाह, विसर्जन, पिन्डा पारन, श्राद्ध आदि मृत्यु संस्कार सम्बन्धी रीतियाँ यहाँ उल्लेखनीय हैं ।

बुन्देलखण्ड में व्रत, पर्वोत्सव, त्यौहार सम्बन्धी रीतिरिवाजों में पौराणिक विश्वास अधिक आस्थाशील है । लोक के विविध देवताओं की पूजा-उपासना सम्बन्धी निष्ठा समाज में रीति बन गई । मानव समाज के आदिम युग से लेकर अब तक निरन्तर विकसित होते रूप में मानव मन तो आगे बढ़ता गया परन्तु समाज की व्रत, पर्व, त्यौहारों सम्बन्धी लोक रीतियाँ आदिम विश्वासों पर आधारित वही पुरानी ज्यों की त्यों रह गई हैं-[2] ।

जातियों के विशिष्ट क्रिया व्यापारों के अनुसार जातिगत रीतियाँ निर्मित हुईं । यहाँ उच्चवर्ग और जमींदार स्वामी माने जाते हैं । और निम्न वर्ग की जातियाँ उनकी प्रजा । सभी संस्कारों, पर्वोत्सवों, त्यौहारों के अवसर पर ये प्रजा जातियाँ अपनी यथा योग्य सेवा के फलस्वरूप नेग, न्यौछावर, वस्त्राभूषण पाती हैं । तब से आज तक उक्त जातियों के रहन-सहन और सामाजिक स्थिति

---

1. "To a Hindu marriage is the most important and most engrossing event of his life; — An unmarried man is looked upon as having no social status and as being an almost useless member of society. He is not consulted on any important subject and no work of any consequence may be given to him" J.A. Debois & Beauchamp: Hindu manners, customs and ceremonies, Oxford, III Ed., Page-205.
2. विस्तृत विवेचन हेतु अध्याय 4.06 देखें ।

में कोई अन्तर नहीं आया है।

गौना, भोज जेवनार, तीज-त्योहार, विवाहादि अवसर पर नये वस्त्र और सोलह श्रृंगार आदि की सामाजिक रीतियाँ, प्रथाएं और परम्पराएं बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति के उपादानों के रूप में चिन्हित हैं।

दण्डविधान-

बुन्देलखण्ड में सामाजिक दण्डविधान का स्वरूप अन्य प्रान्तों की तरह धर्म से सम्बद्ध तथा प्रायश्चित की सीमा में समाविष्ट है। यदि कोई व्यक्ति सामाजिक, नैतिक नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे जाति तथा समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। पुनः जाति में सम्मिलित होने हेतु उसे दण्डस्वरूप सम्पूर्ण बिरादरी को भोज देना पड़ता है तथा निश्चित धनराशि मंदिर में दान करनी पड़ती है। सामाजिक दण्डविधान के परिणाम स्वरूप ही समाज में शान्ति व्यवस्था कायम रहती है।

साहित्यिक गतिविधियाँ-

साहित्य जीवन के विभिन्न अंगों-उपांगों का स्वच्छ, निर्मल जल की तरह पारदर्शक रूप है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में बुन्देलखण्ड के साहित्य, साहित्यकारों, कवियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। "बुन्देलखण्ड का साहित्य अपने पद्यात्मक और गद्यात्मक दोनों ही विभागों में प्राचीन काल से बढ़ा चढ़ा है"[1]। आज भी यहाँ के साहित्य को समृद्ध करने वाले सुकवि और लेखक विद्यमान हैं।

बुन्देलखण्ड के साहित्य को समझने के पूर्व हमें उसकी जातीय, सामाजिक, सामयिक परिस्थितियों तथा मानवीय क्रियाकलापों का तद्युगीन चेतना के आधार पर मूल्याकंन करना आवश्यक है। पूर्व पृष्ठों में उपर्युक्त तथ्यों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है जिससे बुन्देलखण्ड की जनता जनार्दन के विराट स्वरूप का बोध होता है। आलोच्य विषय के अन्तर्गत हम यहाँ बुन्देलखण्ड साहित्य के पद्यात्मक एवं गद्यात्मक रूपों का विवेचना प्रस्तुत करेंगे-

पद्य-

पौराणिक काल से अद्यतन बुन्देलखण्ड असाधारण कवियों की लीलाभूमि रही है। काव्य विधाओं में महाकाव्य, खण्डकाव्य, लघुपद्य कथा, मुक्तक प्रबन्धमुक्तक आदि भावपूर्ण रचनाएँ यहाँ के कृतिकारों की मनः प्रवृत्ति की परिचायक है। इनकी रचनाओं में विषयगत वैविध्य और व्यापकत्व है। यहाँ साहित्य में एक ओर वीरभावना का स्फुरण हुआ है तो दूसरी ओर श्रृंगार और भक्तिरस से ओतप्रोत रचनाएं प्रस्फुटित हुई हैं। वेद व्यास, वाल्मीकि आदि महान विभूतियों ने इसी धरा पर जन्म लिया था। लगभग बारहवीं शताब्दी से ही यहाँ काव्य रचना का प्र प्रारम्भ हो गया था।

1- बुन्देलखण्ड के लोकगीत-श्री रमाशंकर शुक्ल-इण्डियन प्रेस लिमिटेड इलाहाबाद [2010].

बुन्देलखण्ड में काव्य की अपेक्षा गद्य का विकास विलम्ब से हुआ । उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जब देश का शिक्षित समुदाय अंग्रेजी से प्रभावित हो रहा था, तब ऐसे समय में सांस्कृतिक जागरण और लोक की नवीनताओं की सशक्त अभिव्यक्ति हेतु भारतेन्दु जी ने निबन्ध,नाटकों,भाषणों के माध्यम से जागरण का सन्देश दिया । उनकी अविस्मरणीय प्रगतिशील चेतना का प्रभाव बुन्देलखण्ड पर भी पड़ा । उन्हीं के प्रशस्त पथ पर चलकर बुन्देलखण्ड के साहित्यकारों ने भी गद्य साहित्य की प्रत्येक विधा नाटक,उपन्यास,कहानी, निबन्ध,रिपोर्ताज,आलोचना,जीवनी साहित्य,यात्रा वृत्त आदि के स्वरूप को स्थिर ही नहीं किया वरन् लोकोपयोगी साहित्य की अशेष सम्भावनाएँ भी प्रवर्तित कीं । भारतेन्दु युग से लेकर अब तक बुन्देलखण्ड के गद्यकारों ने अपने परिमार्जित परिष्कृत साहित्य से प्रौढ़ विवेचना शक्ति का परिचय दिया है ।

इस प्रकार हम देखते है कि बुन्देलखण्ड का गद्य एवं पद्य सर्वाधिक प्रौढ़ और समृद्ध है । बुन्देल खण्ड की वीर प्रसूता भूमि की गौरव गाथा हमारे देश के इतिहास की अनुपम निधि है । प्राकृतिक वैभव खजुराहो की वास्तु विभूति, तुलसी और केशव की अमृत वाणी प्रकृति का वैभव अनन्त काल तक मानव हृदय को स्पन्दित करती रहेगी । यहाँ का लोक जीवन भावात्मक एकता और सांस्कृतिक समन्वय का श्रेष्ठ उदाहरण है ।

परिशिष्ट-

कवि एवं गद्य लेखक और उनकी रचनाएँ निम्न हैं-

श्री जगनिक- आल्हाखण्ड, श्री प्रेमराज-प्रताप हजारा, श्री कृपाराम- कवितायें, श्री हरीराम व्यास-रासपंचाध्यायी, श्री कवीन्द्र केशव-10 ग्रंथ- रामचंद्रिका मुख्य, श्री सुन्दर-सुन्दर श्रृंगार, श्री बिहारी-बिहारी सतसई, श्री अक्षर अनन्य-ब्रह्मज्ञान, अनन्य ग्रंथावली, विवेक दीपिका, स्वामी प्राणनाथ-ब्रह्मवाणी, प्रगटवाणी, राजविनोद, कीर्तन,पदावली, मण्डनमिश्र-रसविलास, नैनपचासा• गोरेलाल "लाल" छत्रछाया, छत्रसाल शतक• महाराज छत्रसाल- रामावतार के कवित्त, राधाकृष्ण पचीसी• कल्याण मिश्र-छन्दों में रचना• श्रीपति-काव्य सरोज, रससागर• नेवाज-शकुन्तला नाटक• रसनिधि-रतन हजारा• कृष्ण कवि- बिहारी सतसई की टीका सवैयों में• महाराज रामसिंह-अलंकार दर्पण, रसनिवास• रूपसिंह-रूपविलास• बोधसिंह-विरह वारीश, इश्कनामा• बख्शी हंसराज-स्नेह सागर, विरह विलास• विक्रमजीतसिंह-माधवलीला, लघुसतसई• पदमाकर भट्ट-हिम्मत बहादुर विरुदावली, गंगालहरी, पद्माभरण, जगद्विनोद• श्री गुमानकवि- अमरप्रकाश, हनुमान पंचक, पचीसी• श्री ठाकुरदास- ठाकुर ठसक• श्री लाला नवलसिंह- रामायणकाव्य, नाम-रामायण के अतिरिक्त 3[illegible] काव्य ग्रंथ• श्री प्रतापसिंह बन्दीजन- व्यंग्यार्थ कौमुदी, काव्य विलास• श्री बैताल कवि-कुण्डलियाँ,• महाराज विश्वनाथसिंह- कवितायें•

गुमानकवि-श्रीकृष्ण चंद्रिका। श्री पजनेश- मधुरप्रिया, नखशिख, पजनेश प्रकाश; श्री ह्रदयेश- चित्रकलाशिकरन अप्रकाशित। श्री ईसुरी- कई हजारों में फागसाहित्य को अमरनिधि प्रदान की है। श्री गंगाधर व्यास- गौ महात्म्य, नीतिमंजरी। श्री कालीकवि-हनुमत्पताका। श्री चतुरेश- जनप्रिय कवि। श्री मधुदास-भक्तियुक्त छंद। श्री एन उल्लाह हुसैन- भक्तिरहस्य, एल विहार। श्री मदनेश-लक्ष्मीबाई रासो। श्री मुंशी अजमेरी- मधुकरशाह, बुन्देलखण्ड-कविता। श्री घनश्यामदास पाण्डेय- कविताएँ। पं० गौरी शंकर द्विवेदी-बुन्देलवैभव (प्रथम, द्वितीय, तृतीय) श्री नाथूराम माहौर- वीरवधू, दीन के आँसू। रसिकेन्द्र-लगभग 15 पुस्तकें लिखीं। श्री मैथिलीशरण गुप्त-यशोधरा, भारतभारती, पंचवटी, साकेत के अतिरिक्त लगभग 15 प्रमुख रचनाएँ। श्री गोविन्द व्यास। विनोद- शिवशिवाष्टक, कृष्ण कथामृत। श्री घासीराम व्यास- कविताएँ। श्री अम्बिका प्रसाद दिव्य- गांधी पारायण, निमिष पथ। श्री भगवानदास-सैर, ख्याल, फागें, मंत्र, गारी। श्री गोविन्दराम शास्त्री-बुन्देलखण्ड गौरव। नरोत्तम-दासपाण्डेय-कविताएँ। श्री श्यामसुन्दर बादल- बुन्देली का फाग साहित्य। श्री रामचरण हयारण मित्र-बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य। श्री लोकेन्द्र त्रिपाठी- छत्रसाल शौर्य। श्री कृष्णानन्द बुन्देलखण्डी, राज्य श्री। श्री रामरतन शर्मा रत्नेश- रत्नेश शतक। इसके अतिरिक्त स्व० श्री शील चतुर्वेदी, श्री सूर्यप्रसाद दीक्षित, श्री लक्ष्मीनारायण मित्तल, डॉ० आनन्द, श्री सुन्दरलाल सक्सेना पं० कालीचरण दीक्षित, श्री लक्ष्मीनारायण मित्तल, डॉ० आनन्द, श्री शरद, श्री ओमप्रकाश "प्रकाश" श्रीमयंक त्रिपाठी, श्री प्रेमनारायण साहू श्री ओमप्रकाश सक्सैया, श्री राजाराम साहू विक्रम, कन्हैयालाल "कान्ह" आनर, डॉ० रमाशंकर शुक्ल रसाल-मूर्धन्य कवि, राजाराम श्रीवास्तव, श्री केदारनाथ अग्रवाल, श्री कृष्णगोपाल गौतम, श्री हरिनारायण विद्रोही, श्री कन्हैयालाल शास्त्री, श्री मधुप जी, श्री अंचक जी आदि कवि हैं। श्री मोहनलाल बालक-चित्रकूट, प्रेमवाली। श्री गुणसागर सत्यार्थी, परशुराम विरही, श्री हरगोविन्द गुप्त, श्री दुर्गेश दीक्षित, आदि बुन्देलखण्ड के कवियों और उनके काव्यों ने हिन्दी की साहित्यिक समृद्धि की है। कवियित्रियों में रायप्रवीन, प्रेमसखी तीन तरंग, चित्रलेखना, मधुरअली सखी, कंचन कुंवरि श्री श्रीमती कनकलता, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, रामकुमारी चौहान, राजरानी चौहान, कुमारी विमला सक्सेना, श्रीमती चन्द्र भाँ सिंह ने साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान किया।

नाटककार श्री सेठ गोविन्ददास- नाटक-विश्वप्रेम, कर्त्तव्य, भूदान, बड़ा पापी कौन? सेवा या स्वर्ग, प्रेम या पाप। एकांकी- सप्त रश्मि, पंकज। ऐतिहासिक उपन्यासकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा -उपन्यास-कुण्डली चक्र प्रत्यागत, ह्रदय की हिलोर, गढ़कुण्डार, विराटा की पद्मिनी कचनार, झाँसी की रानी, टूटे काँटे, मृगनयनी। नाटक-राखी की लाज। कहानी-दबे पाँव, शरणागत, ऐतिहासिक कहानियाँ, मेंढकी का ब्याह। डॉ० रामकुमार वर्मा- एकांकी-चारुमित्रा, शिवाजी, सप्तकिरण, विभूति, पृथ्वीराज की आँखें, बादलों की मृत्यु-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, कबीर का रहस्यवाद, भाषा-विज्ञान। डॉ० रामविलास शर्मा- भाषा और संस्कृति, साहित्य और संस्कृति, प्रगति और परम्परा, प्रगतिशील साहित्य

को समस्यायें, भारतेन्दु युग॰ पं0 बनारसीदास-चतुर्वेदी-बुन्देलखण्ड के गद्य लेखकों के मार्गदर्शक हैं। मधुकर के सम्पादकत्व में बुन्देलखण्ड और बुन्देली के विकास में आधुनिक जीवन चेतना का उन्मेष किया।

श्रीकृष्ण बल्देव जी वर्मा-"बुन्देलखण्ड पर्यटन" लेख, भर्तृहरिनाटक, प्रेम यज्ञ ना-टक,छ प्रकाश॰ श्री वियोगीहरि-नाटक वीर सतसई, प्रबुद्ध यामुन॰ गद्य काव्य- तरंगिनी, अन्तर्नाद, प्रार्थना, श्रद्धाकरण पगली॰ निबन्ध- साहित्य विहार, उद्यान॰ आत्मकथा-मेरा जीवन प्रवाह॰ श्री सियारामशरण गुप्त- गद्य गीत॰ उषादेवी मित्रा- वचन का मोल, पिया, जीवन की मुस्कान, आवाज, पथचारी, सोहनी कहानी संग्रह-आँधी के छन्द, महावर॰ हिन्दी के कहानीकार, आलोचक अनुवादक श्री कृष्णानन्द जी गुप्त ने लोकवार्तापत्रिका द्वारा बुन्देली को सर्वाधिक सम्पन्न किया है।

श्री रघुनाथ विनायक धुलेकर- आत्मदर्शी गीता भाष्य, वेद-विज्ञानतत्वो-पनिषद॰ पं0 रामसहाय शर्मा- आजादी का बिगुल॰ श्री कृष्णपद भट्टाचार्य-कहानी-अस्पताल, विज्ञान में ब्रह्मदर्शन, भारतीय तत्व दर्शन॰ श्री रामचरण ह्यारण मित्र- बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य॰ श्री शिव सहाय चतुर्वेदी बुन्देलखण्डीलोकगीत, बुन्देलखण्ड की ग्राम्य कहानियाँ, गौने की विदा॰ श्री अम्बिका प्रसाद दिव्य-उपन्यास- निमिया, मनोवेदना, खजुराहो की अतिरूपा॰ नाटक-लंकेश्वर॰ गद्य-दीपक सरिता॰ एकांकी नाटक- मादक द्रव्य मुर्दाबाद, फूटी आँखें॰ निर्मलसिंह दरदी- दो वीर, बच्चों का बलिदान॰ पं0 कृष्ण किशोर द्विवेदी-कविताएँ॰ श्री दुलीचन्द अग्निहोत्री-"तुलसी का रावण हेय क्यों" शोध प्रबन्ध॰ श्री श्यामलाल साहू- "विंध्य प्रदेश के राज्यों का स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास"॰ कवि लेखक, नाटककार श्री हरगोविन्द जी गुप्त ने बुन्देली और बुन्देलखण्ड को नई चेतना दी है।

द्वितीय अध्याय

2.0 उपासना का स्वरूप

2.1. भारतीय उपासना का स्वरूप

2.1.1. वैदिक काल से पूर्व

2.1.2. वैदिक काल

2.1.3. पुराणकाल

2.1.4. आदिकाल

2.1.5 भक्तिकाल

2.1.6 रीतिकाल

2.1.7. आधुनिक काल

उपासना का स्वरूप-

"उपासना" उप + आसना के योग से "उप" उपसर्ग "आस उपवेशने" धातु और भाव अर्थ में युच [अन] प्रत्यय लगाने पर बना है। "उप" का अर्थ है- समीप और आसना का अर्थ है- बैठना। इस प्रकार उपासना का शाब्दिक अर्थ है- समीप बैठना। शाब्दिक अर्थ से उपासना के पूर्ण भाव का प्रकाशन नहीं होता। उपासना का व्यापक अर्थ है- आत्मा का परमात्मा के समीप बैठकर उसके गुणों को अपनाते हुए उससे तादात्म्य स्थापित कर लेना।

उपासना के अर्चना, आराधना, पूजा, परिचर्या, परिवस्या, सेवा, यजन, वन्दन, ध्यान, चिन्तन, जप, उपस्थान, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, भजन, योग और समाश्रयण आदि विविध क्रियात्मक अनुष्ठानिक पर्याय हैं।

उपासना की परिभाषाएं---- वेद[1], उपनिषद[2], श्रीमद्भागवत[3], गीता[4], कुलार्णवतंत्र[5], अमरकोष[6], वाल्मीकिरामायण[7], आदि में उपासना पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उक्त सभी ग्रंथ मोक्ष प्राप्ति के साधनों में उपासना को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। छान्दोग्योपनिषद[8] पर भाष्य की भूमिका में भी उपासना में मन को स्थिर रखने की बात कही गई है।

1- यो देवमुत्तरावन्तमुपासाते सनातनम्---अथर्ववेद, 10/8/22.

2- सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलान् इति शान्त उपासीत-सामवेदीय छान्दोग्य, 3/14/1.

2- तद्वनमित्युपासितव्यम्---केनोपनिषद, 4/6.

3- मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्व गुहाशये।
मनोगति रविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ-- श्रीमद्भागवत, 3/29/11.

4- "ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते"-- गीता, 12/3.

4- "उपासनं नाम यथा शास्त्रमुपास्यस्यार्थस्य विषयीकरणेन सामीप्यमुपगम्य-- तैलधारावत समान प्रत्यय प्रवाहेण दीर्घकालं यदासनं तदुपासनमाचक्षते"।
-- गीता-अध्याय-12, श्लोक-3 के शांकरभाष्य से।

5- कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
समीपसेवा विधिना उपास्तिरिति कथ्यते।। --कुलार्णवतंत्र-17/67.

6- पूजा नमस्यापचिति सपर्यार्चार्हणाः समाः।
वरिवस्या तु शुश्रूषा परिचर्याप्युपासना।। --अमरकोष-2/7/34/35.

7- "उपासां चक्रतुर्वीरौ यत्तौ परम धन्विनौ"-- वाल्मीकिरामायण-1/30/6.

8- "उपासनं तु यथाशास्त्र समर्थितं किंचिदालम्बनमुपादाय तस्मिन् समान चित्तवृत्ति सन्तानकरणं तद्विलक्षणप्रत्ययानन्तरितम्"।

अर्थात् शास्त्र किसी ऐसे उपयुक्त आलम्बन पर मन को सतत् स्थिर करने की प्रक्रिया जो साध्यवस्तु से सम्बन्ध रखने वाले समान विचारों के प्रवाह को उत्पन्न करें और विरोधी विचारों को मन में प्रविष्ट होने से रोके "उपासना" है। -- श्री शंकराचार्य-वाणी विलास, संस्करण खण्ड-6, भाग-2, पृष्ठ-1.

परिभाषाओं के आधार पर उपासना के स्वरूप निर्धारण सम्बन्धी निम्न तथ्यों का प्रकटीकरण इस प्रकार होता है-

* परब्रह्म में एकान्त प्रीति करना उपासना है।
* अपने आराध्य के प्रति अनुराग पूर्वक श्रद्धाभक्ति से पूजन,अर्चन,चिन्तन करना ही उपासना है।
* जिस उपाय या क्रिया द्वारा दुर्लभ सत्य तत्व सुलभ हो जाय या आत्मा-परमात्मा के बीच से अन्तर तिरोहित हो जाय वह उपासना है।
* संसार से मन हटाकर पारलौकिक कल्याणार्थ की गई साधना उपासना है।

उक्त परिभाषाओं से उपासक,उपास्य और उपासना ये तीन स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं।

इस सन्दर्भ में कर्म,भक्ति,ज्ञान और योग आदि का अन्तर्भाव उपासना में हो जाता है। उपासक को अपने अनुकूल सगुण-निर्गुण किसी भी उपासना रूप का तथा किसी भी उपासना मार्ग का निष्ठापूर्वक सच्चे हृदय से दृढ़ता के साथ,दीर्घकाल तक निरन्तर अवलम्ब करने पर अज्ञानान्धकारमय जीवन ज्योतिर्मय हो जाता है। इस प्रकार हमारा पार्थिव जीवन दिव्य जीवन में रूपान्तरित होने लगता है। अतएव ईश्वर के किसी भी रूप की उपासना की जाय अन्ततः वह उसी की होती है। उसके साकार -निराकार, सगुण-निर्गुण रूपों में कोई भेद नहीं होता। व्यापक होने से निराकार ही अन्त में उपासना से व्यक्त हो जाने पर साकार रूप धारण करता है। उपासना में सात्विक आहार,सत्यभाषण,संयम और सत्संग आदि साधनों के अपनाने से मन निर्मल और सबल होता है। उपासना द्वारा लक्ष्य प्राप्ति में यदि आत्म विश्वास दृढ़, व्याकुलतापूर्ण हो तथा मन में उठने वाले अनुकूल-प्रतिकूल संकल्पों हेतु त्यागभाव और फल की प्राप्ति,अप्राप्ति में समताभाव हो तो उसे सिद्धि प्राप्ति निश्चित होती है। परोपकारी दृष्टि से की गई लोकसेवा भी उसी विश्व रूप परमात्मा की उपासना है। "उपासना का महत्त्वपूर्ण स्वरूप है--- एक भगवान ही समस्त विश्व-चराचर के रूप में अभिव्यक्त है--- यह समझकर किसी का अपमान, अनिष्ट न करके किसी को दुख न पहुँचाकर,किसी का अहित न कर, सदा-सर्वदा अपनी सारी योग्यता,सारी शक्ति, सारी सम्पत्ति,सारी बुद्धि और सारा जीवन लगाकर मन,वाणी,शरीर से सबका सम्मान करना, सबका दुख निवारण करना, सबको सुख पहुँचाना और सबका हित करना।"[1] अतः" उपासना व्यक्ति हृदय की विश्राम भूमि है, सन्तप्त हृदय की शीतल छाया है। उपासना से ही आत्मा सन्तोष तृप्ति और परमशान्ति अनुभव करता है।"[2] अन्त में हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि "भगवान से कुछ भी चाहना कर्म है और स्वयं भगवान को चाहना उपासना है।"[3]

1- कल्याण- उपासना अंक- 41/1,पृष्ठ 695,1968.
2- वही,पृष्ठ 251.
3- कल्याण "भक्ति अंक"- 32/1 पृष्ठ 398,1958.

भारतीय उपासना का स्वरूप-

भारत धर्मप्राण देश है । अतः उसका दृष्टिकोण आदर्शमूलक और अध्यात्मवादी रहा है । वैदिक युग से लेकर आज तक व्यष्टि और समष्टि दोनों में भक्ति-भावना ओत-प्रोत रही है । वेद,उपनिषद में प्रयुक्त उपासना शब्द और भागवत, पुराणादि में प्रतिपादित भक्ति शब्द एक ही सत्य-तत्व की अनुसन्धानात्मक प्रवृत्ति के द्योतक हैं । अतः उपासना और भक्ति में कोई अन्तर नहीं है । दोनों ही समानार्थक, समान कल्याणकारण हैं एवं दोनों का एक ही चरम लक्ष्य है- मोक्ष प्राप्ति । "उपासना उपास्य की, भक्ति भजनीय की होती है अतएव "सर्वदेवनमस्कार केशवं प्रति गच्छति" के अनुसार एक केशवदेव ही उपास्य और भजनीय है ।"1

भारतीय उपासना में परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले ईश्वर के सगुण-निर्गुण रूप अनुस्यूत हैं । सगुणोपासना के अन्तर्गत-ब्रह्मा,विष्णु,महेश एवं उनके अवतारों से लेकर भैरव-भवानी, सभी ग्रामीण लौकिक देवी-देवताओं एवं आकार युक्त मूर्तियों की उपासना सन्निविष्ट है । निर्गुणोपासना के अन्तर्गत पृथ्वी के एक परमाणु से लेकर महाकाशपर्यन्त अहं तत्व, महत्तत्व तथा निराकार-निर्गुण तत्व की उपासना सन्निहित है ।

भारतीय उपासना के "वैदिक युग में इन्द्र,वरुण आदि देवताओं का एकाधिपत्य था । ब्राह्मण युग में उनके स्थान पर प्रजापति आदि देवताओं की प्रतिष्ठा हुई । यह प्रजापति ब्रह्मा कहलाये । तदनन्तर महाभारत के युग में ब्रह्मा के अतिरिक्त विष्णु और शिव की प्रधानता होकर इस त्रिमूर्ति का अर्चन-पूजन हुआ । इसी समय भागवत धर्म का उदय हुआ, जिसका विकास वासुदेव कृष्ण की सेवा-भक्ति के रूप में हुआ"2। इस प्रकार भारतीय उपासना में ज्ञान कर्म की अपेक्षा उपासना का प्रभाव लोक-जीवन पर बढ़ता गया ।

"वेदों में इंद्र-इन्द्राणी,अग्नि-आग्नेयी,द्यावा-पृथ्वी,पूषन-उषा,अदिति-ब्राह्मण, आरण्यक,उपनिषद में ओंकार,ब्रह्मा,विष्णु,शिव,शक्ति,सूर्य तथा गणपति आदि के रूप में उपासना का विशेष महत्व बतलाया गया है ।"3

हिन्दी के आदिकाल में वैदिक-यज्ञ,मूर्ति-पूजा,हठयोग-साधना,जैन,बौद्ध आदि उपासना पद्धतियाँ एक साथ प्रचलित थीं । भक्तिकाल तथा रीतिकाल में उपासना के सगुण-निर्गुण दोनों स्वरूपों को ग्रहण किया गया । जिसमें पौराणिक युगीन उपासना का प्रसार ही अधिक परिलक्षित होता है । आधुनिक काल में उपासना के नवीन परिष्कृत "लोकसेवा" को स्वीकार किया गया है, साथ ही सगुण-निर्गुण ब्रह्म की उपासना का विवेचन आधुनिक सन्दर्भों में किया गया है । इस प्रकार भारतीय उपासना के स्वरूप के अन्तर्गत सैन्धव युग से लेकर आधुनिक काल तक की उपासना का पर्याप्त पर्यवेक्षण किया गया है । वर्तमान भारत में पौराणिक उपासना का प्रचलन है ।

1- कल्याण-"उपासना अंक",41/1,पृ॰9,1968॰

2- भारतीय दर्शन-श्री वाचस्पति गैरोला,पृष्ठ 68,हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद,1962॰

3- कल्याण-उपासना अंक,41/1,पृ॰389,1968॰

सनातन आचार्यों ने भी पौराणिक रूप की उपासना की है । प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से कालानुसार उपासना के स्वरूप का पृथक-पृथक विवेचन किया गया है ।

वैदिक काल से पूर्व-

प्रागैतिहासिक युग के पूर्व पाषाण कालीन मानव की कहानी धुंधली और अंधकारपूर्ण है । इस प्रारम्भिक अवस्था के मानव में न तो संस्कृति का अभ्युदय हुआ था और न ही उसका अपना कोई धर्म था । परन्तु नवपाषाण युगीन मानव के हृदय में ज्ञान की प्रथमावस्था में प्राकृतिक दृश्यों और रहस्यों का भेद न जान पाने के कारण प्रकृति की अद्भुत शक्तिशालिनी प्रवृत्तियों के प्रति आश्चर्य एवं कौतूहलवश उसकी प्रशंसा में पूजा-अर्चा, स्तुति एवं उपासना की स्वाभाविक रूप से प्रतिष्ठा हुई होगी । एक सीमा तक सम्भवतः उनके धर्म की रूप-रेखा भी नियोजित हुई होगी और उन्होंने वन, सरिता, पशु-पक्षी एवं वृक्षों की देवी-देवता रूप में विश्वास करके उन्हें प्रसन्न करने हेतु प्रिय वस्तुओं से उनकी पूजा प्रारम्भ की होगी । इस प्रकार विभिन्न कालों और प्रदेशों में प्रकृति के प्रति उपर्युक्त अर्चना के विभिन्न रूप भी रहे होंगे । इन्हीं रूपों के विकास में सैन्धवोपासना और वैदिकोपासना के स्वरूप के दर्शन होते हैं ।

मानव समाज की सौष्ठवपूर्ण प्रगति हेतु अभिनव धार्मिक प्रवृत्तियाँ सदैव विकासशील रही हैं । इसका पुष्ट प्रमाण सिन्धु सभ्यता के अवशेषों से स्पष्ट मिलता है । सिन्धु घाटी से प्राप्त विभिन्न मूर्तियों एवं चिन्हों के आधार पर सैन्धवों के धार्मिक-विश्वास तथा उपासना के स्वरूप का अनुमान लगाया गया है । सैन्धव मूर्ति पूजक थे । सैन्धवोपासना के क्षेत्र में सबसे अधिक पूजनीय देवी का स्वरूप माता का था । मातृदेवी की पूजा और मातृदेवी के सम्प्रदाय का प्रचार प्रमुख था । सम्भवतः उनका मत था कि वह प्रकृति का आदि शक्ति का प्रतीक एवं सृष्टि का परिणाम है । मातृदेवी के चित्र मृत्तिका पात्रों, मुद्रों और ताबीजों पर अंकित पाये गये हैं । उनकी मिट्टी की अगणित मूर्तियाँ मिली हैं । सम्भवतः पृथ्वी देवी के रूप में एक मुद्रा पर स्त्री के पेट से पौधे की उत्पत्ति और विकास का चित्रांकन है । मातृदेवी के समकक्ष वैदिक युग की अदिति तथा पौराणिक युगीन चण्डी, दुर्गा, अम्बा, काली, भवानी आदि हैं, जो आज भी गाँव-गाँव में ग्राम देवी के रूप में प्रतिष्ठित हैं ।

मातृदेवी की उपासना के साथ-साथ नरदेवता की उपासना का भी प्रचलन था । सैन्धव शिवोपासक थे । वे सम्भवतः शिव के पाशुपत योग के साधक थे, क्योंकि इस युग में उनके पशुपति एवं लिंग-प्रतीक की प्रतिष्ठा थी । उस समय की शिवांकित त्रिमुखी, ध्यानस्थ योगी की मुद्रा हिंस्र वन्य पशुओं से समावृत है, जिसके ऊँचे शिरस्त्राण के दोनों ओर दो सींग तथा भुजाओं में कड़े हैं । शिव की मुद्राओं में योगीश्वर, ऊर्ध्वलिंग, विरूपाक्ष आदि के अनेक स्वरूप चित्र अंकित मिले हैं ।

देवता की 9 इंच लम्बी पोशाक युक्त मूर्ति कई स्थानों पर मिली है जिसकी छोटी दाढ़ी, अन्दर मुड़ा हुआ होंठ, बालों के बीच माँग एवं अधमुँदे नेत्र से योग मुद्रा का संकेत मिलता है । शिव के साथ इस नरदेवता के एकीकरण की

पुष्टि शिवलिंग की आकृति में प्राप्त पाषाण खण्डों से दृढ़ हो जाती है ।

सैन्धव नाग-पूजा, पाषाण-पूजा, वृक्ष-पूजा, जल-पूजा एवं पशु-पूजा इस अभिप्राय से करते थे कि वे मंगलकारी या अमंगलकारी आत्माओं के निवास स्थान हैं । वे स्नानोपरान्त सम्भवतः पूजा-पाठ और ध्यान करते थे । पूजन के समय या कर्मकाण्डों के अवसर पर नृत्य और वाद्य-संगीत का आयोजन करते थे । भूत-प्रेत, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, ताबीजों के प्रति उनकी दृढ़ आस्था थी ।

वृक्ष-पूजन इस धारणा से होता था कि वे प्राण एवं जीवन दाता है । वृक्षों के पार्थिव रूप एवं अधिष्ठातृ देवता के काल्पनिक रूप-दोनों की उपासना होती थी । वृक्षोपासना का स्वाभाविक परिणाम प्रतीक रूप में नागों एवं यक्षों की उपासना है । कुछ मुद्राओं में सूर्य एवं नागोपासना के चिह्न अंकित हैं । पुरातत्वज्ञों का मत है, कि उस समय नदी पूजा होती थी और सम्भवतः विशाल स्नानागार सरिता देवी के मंदिर रहे होंगे । पूज्यनीय पशुओं-भैंस, नील गाय, बैल, हाथी, गैंडा, व्याघ्र, चीता आदि की मुद्राओं पर अंकित, मिट्टी से निर्मित एवं पत्थर पर आसीन मूर्तियाँ मिली हैं । कुछ पशुओं की पत्थर पर आसीन मूर्तियाँ सम्भवतः किसी देवता के पाशविक प्रदर्शन की प्रतीक हैं । कुछ काल्पनिक पशुओं की मिश्रित मूर्तियाँ मिली हैं जिनका सिर मानव का है, तो धड़ किसी पशु का या सिर किसी पशु का है, तो धड़ मानव का । मिश्रित मूर्तियाँ परवर्ती धार्मिक शिल्प की अक्षुण्ण परम्परा की स्मारिका हैं ।

सैन्धव योनि और लिंग की प्रतिमा के माध्यम से प्रकृति की प्रजनन-शक्ति की उपासना करते थे, जिसमें हमें चेतनवाद या सर्वजीववाद के प्रचलन का आभास मिलता है । शैवोपासना के दो परिष्कृत रूप भक्ति सम्प्रदाय के अस्तित्व तथा पुनर्जन्म जैसे दार्शनिक सिद्धान्त हैं, जिनके प्रमाण हमें मोहन-जोदड़ो में प्राप्त हुए हैं । वैदिक-काल से पूर्व के अर्द्धसभ्य मानव में भी मुक्ति की भावना अवश्य विद्यमान रही होगी । यह बात दूसरी है कि उसका स्वरूप कुछ और रहा हो जो पूर्ण सभ्य मानव के विविध दर्शनों से मेल न खाता हो । उस समय मुक्ति की भावना का अर्थ स्वर्ग प्राप्ति रहा होगा और स्वर्ग प्राप्ति से तात्पर्य रहा होगा मृत्यु के उपरान्त उस लोक की प्राप्ति, जहाँ मनुष्य अपने जीवन काल के दुखों और कष्टों से दूर होकर उन सम्पूर्ण अभावों का पूर्णतम तथा सर्वाधिक उपभोग कर सकें जो अपूर्ण रह गये हों ।------ मृत्यु के बाद उस लोक में पहुँचकर मनुष्य अधिक से अधिक सुखोपभोग कर सके और जीवितावस्था के अभावों की पूर्ति कर सके इसीलिये उनके निर्जीव शरीर के साथ सम्पूर्ण सामग्री पृथ्वी के अन्दर रख दी जाती थी । इस क्रिया के मूल में मुक्ति की भावना ही किसी न किसी रूप में वर्तमान थी"[1] ।

1- भक्तिकाव्य में रहस्यवाद-डॉ० रामनारायण पाण्डे, पृष्ठ 323, अगस्त 1966
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जवाहरनगर, दिल्ली.

आर्यों के भारत आगमन के बहुत काल पहले ही शिव,काली, लिंग-पूजा एवं हिन्दू धर्म की सर्व प्रिय प्रथाएं प्रचलित हो चुकी थी । आर्य जाति के देवताओं की नकलें द्रविड़ देवताओं के सम्पर्क से जन्मी जो आज हिन्दुओं के आराध्य हैं[1]। वेदों में मूर्ति-पूजा नहीं है तथा मातृदेवी एवं लिंग के सदृश कोई चिन्ह भी नहीं मिलते परन्तु आज वे हिन्दू धर्म के प्रमुख अंग हैं । सिन्धु घाटी का धर्म हिन्दू धर्म के पूर्व पुरुष के समान है जिससे उसकी उत्पत्ति व विकास हुआ है[2]।

निर्विवाद है, कि भारत में उपासना का प्रादुर्भाव आर्यों के आगमन से नहीं बल्कि पहले ही हो चुका था । पूजा के समय वाद्य संगीत ढोल, तबला, बीणा आदि के साथ नृत्यगान करने के चित्र प्राप्त हुए हैं । अतः गीतों का प्रादुर्भाव सम्भवतः इसी युग की देन है । आधुनिक बुन्देलखण्ड में वृक्ष, नाग, सूर्य उपासना सम्बन्धी लोक-गीतों का प्रचलन सिन्धु उपासना की शुद्ध भारतीयता को सिद्ध करते हैं । सर जॉन मार्शल ने कहा है कि कृष्णोपासना पद्धति को छोड़कर मोहन-जोदड़ो में हमें हिन्दुओं के सभी सम्प्रदाय का आदि रूप मिलता है । वर्तमान हिन्दू धर्मोपासना जिसमें उपरोक्त उपासना के अनेकांश प्रतिबिम्बित हैं-सिन्धु उपासना का ऋणी है ।

1- हिन्दी विश्वभारती-भगवत शरण उपाध्याय, पेज 1942.
2- भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास-बी.एन0 लूनिया, पृष्ठ-27, संस्करण 1976.

वैदिक काल-

मन्त्रों द्वारा प्रकृति के विभिन्न रूपों की पूजा ही धर्म की शैशवावस्था मानी जा सकती है । प्राचीन आर्यों की उपासना में इन्द्र, वरुण, सूर्य आदि प्रकृति के विभिन्न उपादानों की दिव्य सत्ताओं की प्रतिष्ठा रही है परन्तु इस काल में धर्म का पूर्ण विकास हो चुका था । इस काल में दिव्य सत्ताओं से लौकिक सुखों की प्राप्ति, शत्रुनाश एवं ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु की गई उपासना का व्यावहारिक रूप तो स्पष्ट परिलक्षित होता है लेकिन आध्यात्मिक रूप मात्र प्रतिभासित ही होता है । इन दिव्य सत्ताओं को देवत्व के श्रेष्ठतम गुणों से विभूषित कर विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया तथा प्रत्येक सत्ता को सर्वशक्तिमान सर्वव्यापी मानकर मंत्रों द्वारा उसकी प्रार्थना की गई । इस युग में आकाशीय, वायवीय एवं पार्थिव देवताओं की प्रतिष्ठा हो चुकी थी । इनमें द्यौः, वरुण, मित्र, सूर्य, सविता, विष्णु, पूषा, उषा, इन्द्र, रात्रि अश्विन आदि आकाशीय देवता-इन्द्र, रुद्र, मरुत, वायु, पर्जन्य, अपांनपात आपः आदि वायवीय देवता तथा पृथ्वी, अग्नि, बृहस्पति, सोम, सिन्धु, विपाशा, अश्विनी, सरस्वती, शतुद्री, समुद्र आदि पार्थिव देवता हैं । ऋभु, वास्तोष्पति, गन्धर्व, क्षेत्रपति, सीता, नदी, अप्सरा, वन, वृक्ष और पर्वतादि अधिष्ठातृ देव, तथा धाता, विधाता, त्राता आदि कर्तृदेव साधारण देवता माने गये ।

वैदिकोपासना में कहीं बहुदेववाद का सिद्धान्त दृष्टिगोचर होता है तो कहीं एकेश्वरवाद का । कहीं देवताओं की उपासना है तो कहीं परमात्मा की । कभी सामूहिक रूप से देवताओं का आह्वान किया गया है तो कभी दो देवताओं का एक साथ स्तवन किया गया है । मंगलकारी देवताओं से धन, जन, पशु, अन्न आदि की वृद्धि या लौकिक सुखों की प्राप्ति हेतु उपासना तथा अमंगलकारी देवताओं से घृणा भयमिश्रित भावना से उपासना की गई है और उनके कोप से बचने के प्रयत्न किये गये हैं । वेदों में इन्द्र[1] को उस स्वर्गलोक, पाताल लोक एवं पृथ्वीलोक का नियन्ता माना गया है । बल, पराक्रम, वर्षा, औषधि तथा विजय श्री के स्वामी रूप में इन्द्रोपासना का स्पष्ट उल्लेख है । ऋग्वेद का सातवां मण्डल वरुण[2] के आधिपत्य की महिमा से परिपूर्ण है । त्रिकालदर्शी वरुण मानव के सब कार्यों में साक्षी माने गये हैं अतः वे पापियों को दण्डित और पुण्यात्माओं को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले कहे गये हैं । दैत्यों को तितर-बितर करने में इन्द्र के सहायक रूप में मरुत[3] उल्लेखनीय हैं । सवितृ, मित्र, पूषन, विष्णु नाम सूर्य[4] की शक्तियों के परिचायक हैं । कई सूक्तों में अग्नि[5] एवं सोम[6] की उपासना का उल्लेख है ।

1- ॐ इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या: इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम्
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ।।
-ऋग्वेद-10/89/10.
स न इन्द्रः शिवः सखा-ऋग्वेद-8/83/3, ऋग्वेद में इन्द्रोपासना का उल्लेख निम्नलिखित ऋचाओं में मिलता है- 10/50/1, 1/80/3, 7/25/4, 7/32/2, 1/7/14/4, 8/92/32,

2- ऋग्वेद-1/25/5, 1/2/5/7, 1/24/15, 1/14/9.

3- डा. विद्युन्मदभिः मरुतः-ऋग्वेद-1/88/1.

4- ऋग्वेद-1/115/1, 10/53/6. [5] ऋग्वेद-10/7/3. [6] ऋग्वेद-8/48/3.

रुद्र[1] को क्रोधी देवता माना गया है। ऋग्वेद के लगभग एक चौथाई सूक्तों में इन्द्र को, बारह सूक्तों में वरुण को, पाँच सूक्तों में विष्णु को, ग्यारह सूक्तों में सविता[2] को, आठ सूक्तों में पूषा को, पचास से अधिक सूक्तों में अश्विन को, बीस सूक्तों में उषा[3] को, दो सौ के करीब सूक्तों में अग्नि की एवं एक सौ बीस सूक्तों में सोम की स्तुति की गई है। इन देवताओं के अतिरिक्त धाता, विधाता, श्रद्धा[4] मन्यु आदि सूक्ष्म और अमूर्त देवता की उपासना का भी उल्लेख मिलता है।

बाद की ऋग्वैदिक ऋचाएँ एकेश्वरवाद की भावना, अद्वैतवाद की प्रवृत्ति का बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रतिपादन करती हैं। विभिन्न नामों से एक ही परमेश्वर की उपासना की गई है। उस एकपरमेश्वर को विद्वान लोग विभिन्न नामों से पुकारते हैं[5] इस परमात्मा की उपासना सम्पूर्ण विश्व करता है[6]।

वास्तव में ऋग्वैदिक सूक्त ~~और~~ मंत्र और प्रार्थनाओं के समूह हैं जिनके स्तवन से देवताओं को प्रसन्नकर पार्थिव सुखों की आशा की जाती थी।

वैदिक कालीन धर्म और दर्शन में संसार को निराशावादिता से देखने शरीर से मुक्ति प्राप्त करने, सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पाने के लिये वैराग्य भी संकेत नहीं है। धर्म, अर्थ, काम तीनों के बीच विरोधाभास न होकर समन्वय था। मंदिर और मूर्तियों का अभाव था। पुष्पों से देवपूजन का विधान तथा वृक्षों, नदियों की उपासना प्रकृति मूलक थी जो प्रागैतिहासिककाल से प्रारम्भ होकर वैदिक काल में विकसित हुई और आज तक प्रचलित है। प्रकृति मूलक उपासना अन्ध परम्परा पर आधारित न होकर सौन्दर्यानुभूति तथा भावानुभूति की प्रतीक थी जो बाद में शक्ति की उपासना में परिवर्तित हुई।

1- ऋग्वेद- 2/33/10.

2- ऋग्वेद-10/149/4, 5/82/5.

3- ऋग्वेद-1/124/7, 3/61/2, 1/92/12.

4- ऋग्वेद-10/151/1,
श्रद्धे श्रद्धापयेह नः- ऋग्वेद-10/15/5.

5- इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं
यमं मातरिश्वानमाहुः-ऋग्वेद-1/164/46.

6- विश्व उपासते-ऋग्वेद-10/12/2.

वैदिकोपासना का प्रमुख अंग यज्ञ माना जाता था । सोम यज्ञ का विशेष प्रचलन था । इससे सम्बन्धित कर्मकाण्ड चरम-सीमा पर थे । जीवन यज्ञमय था तथा प्रत्येक शुभ अवसरों पर एवं विभिन्न संस्कारों के अवसर पर मंत्रों द्वारा देवताओं का आव्हान कर उन्हें भोजन व पेय समर्पित करना अनिवार्य था । ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञों का स्पष्ट एवं विस्तृत विवेचन मिलता है । विभिन्न देवताओं को स्तुतियों एवं प्रार्थनाओं से तत्कालीन धार्मिक मन्तव्यों एवं दार्शनिक चेतना के विकासका ज्ञान होता है ।

तात्त्विक विवेचन:-

वैदिक काल से ही जीव, ब्रह्म, संसार, जीवन-मरण सम्बन्धी मानसिक वृत्तियों के दर्शन होने लगते हैं जिसका पूर्ण विकास उपनिषदों में मिलता है ।

जीव व ब्रह्म-

वैदिक आर्यों ने प्राकृतिक शक्तियों के माध्यम से निष्कर्ष निकाला था कि कोई सर्वोच्च सत्ता अवश्य है जो विश्व को नियंत्रित करती है और जीवों में प्राण शक्ति भरती है । सभी देवगण भी उसी विश्वनियन्ता परमात्मा से उत्पन्न और उसी के अंश है । जीव-ब्रह्म के स्वरूप भेद को दो खग पक्षियों के माध्यम से भलि-भांति विवेचित किया गया है जो सखाभाव के रूप में जीवात्मा और परमात्मा हैं"[1]। यजुर्वेद[2] के अन्तिम अध्याय में वर्णित जीव व ब्रह्म की एकता के तत्व से तत्कालीन आध्यात्मिक विकास का समुचित ज्ञान प्राप्त होता है ।

सृष्टि विकास--

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में निगूढ़-दर्शन का खाकीकरण होता है । वेदों में सृष्टि को आदि व अनन्त मानकर श्रेष्ठ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है । ऋग्वेद के नासदीयसूक्त"[3] में सृष्टि के विकास का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत हुआ है । इससे भारतीय दर्शन का प्रारम्भ माना जाता है । नासदीयसूक्तानुसार सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व सब अन्धकारमय था । सद् और असद् न था । लेकिन तप द्वारा सद् व असत् के व द्वैधीभाव के पश्चात् अन्य संसृष्टि हुई । इस सूक्तानुसार काम मनसोरेत: अर्थात सृष्टि उत्पत्ति का कारण है । सद् एवं असद् में पुरुष व प्रकृति के और उसके पूर्व ऐक्य स्थिति में वेदान्त के अद्वैतवाद के बीज रूप में दर्शन होते हैं ।

1- "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्य नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति" ।।
ऋग्वेद-1/164/20.

2- यजुर्वेद-40/7.

3- ऋग्वेद-नासदीयसूक्त-10/129.

हिरण्य गर्भसूक्तानुसार[1] हिरण्यगर्भ ही विश्व नियन्ता है व आकाश, पृथ्वी आदि का निर्माता है। वह सृष्टि के प्रारम्भ में भी विद्यमान था। पुरुष सूक्तानुसार[2] सृष्टि उत्पत्ति एक महान यज्ञ है। परमात्मा रूपी पुरुष से विश्व निर्मित है। इसी पुरुष से विराट और विराट से पुनः पुरुष उत्पन्न है। अतएव पुरुष उत्पादक-उत्पादित एवं आत्मा-जीवात्मा है। शंकर का मायावाद इसी से विकसित है। ऋग्वेद[3] में वर्णित है कि परमात्मा ने सर्वप्रथम ऋत व सत्य की सृष्टि की तदुपरान्त दिन-रात, आकाश-पृथ्वी आदि की सृष्टि की। वरुण, इन्द्र, अग्नि तथा विश्वकर्मा भी सृष्टि कर्त्ता हैं।

पुनर्जन्म-

वैदिककाल में पुनर्जन्म सिद्धान्त के अनुसार मृत्योपरान्त जीव कर्मों के फलस्वरूप अलौकिक शरीर धारण करते हैं[4]। यम के राज्य में जीव आनन्द भोग करते हैं[5]। स्वर्ग-नरक का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इस प्रकार हम देखते है कि देवताओं में एकत्व की खोज से प्रारम्भ होकर वैदिक उपासना का स्वरूप कालान्तर में तत्वों में पर्यवसित हो गया। "तत्व दर्शन, वाणी और कर्म के क्षेत्र में आर्य जाति विश्व की समस्त जातियों में ऊर्ध्व स्थान पर खड़ी है, इसे मैक्समूलर, रैप्सन आदि सभी पाश्चात्य विद्वानों ने स्वीकार किया है"[6]।

उत्तर वैदिक काल-

उपनिषदोपासना-वैदिक संहिताओं में निहित तत्व ज्ञान का बीज उपनिषदों में आकर अंकुरित, पल्लवित और परिपोषित हुआ। वैदिक यज्ञों का नवीन परिष्कृत स्वरूप आत्मज्ञान एवं आत्म दर्शन उपनिषदों में प्राप्त होता है।

1- ऋग्वेद-10/121.

2- ऋग्वेद-10/90.

3- ऋग्वेद-10/190/1-3.

4- अथर्ववेद-19/67/68.

5- ऋग्वेद-6/6/10; 9/4/1/2; 10/88/5.

6- वैदिक संस्कृति और सभ्यता-डॉ0 मुंशीराम शर्मा "सोम", पृष्ठ-321.

उपनिषदों का शाब्दिक अर्थ है [उप + नि + सद] ब्रह्मज्ञान के लिये गुरु के पास बैठना । किन्तु "उपनिषद" का मुख्य अर्थ है अध्यात्म विद्या जो ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है । [गति] तथा उसके अनुशीलन से अविद्या का नाश हो जाता है । तदनन्तर अध्यात्म के प्रतिपादक ग्रंथों के लिये भी इसका व्यवहार होता है।[1] उपनिषदों में ब्रह्मनिष्ठ गुरु से ब्रह्मप्राप्ति हेतु उपासना को योजना विशेष रूप से हैं । उपासक जिस उपास्य की उपासना करता है वह वही बन जाता है । महः, मन, और नमः की उपासना करने पर उपासक क्रमशः महान, मानवान तथा कामनाजयी बन जाता है । ब्रह्मोपासना सर्वश्रेष्ठ उपासना है जिससे वह ब्रह्मवान बन जाता है ।

ब्रह्म का स्वरूप-

उपनिषदों के अनुसार परम सत्य अचिन्त्य व और अनिर्वचनीय है । परम सत्य ब्रह्म है । जड़, चेतन समस्त विश्व ब्रह्मात्मक है । पर-ब्रह्म सत्य, ज्ञान तथा अनन्त है[2] । विज्ञान एवं आनन्द मय है[3], वह सर्वव्यापी, सर्वज्ञानी सबका आत्मा है। सृष्टि उसी से उत्पन्न, उसी में स्थित और उसी में लीन हो जाती है । सब ब्रह्मस्वरूप है[4]। वह अणु से छोटा और महान से भी महत्तर है । नेति-नेति [यह नहीं, यह नहीं] ही परब्रह्म का वास्तविक स्वरूप है । परब्रह्म निरुपाधि है । "अहं ब्रह्मास्मि" तत् त्वमसि; सर्वं खलु इदं ब्रह्म आदि महावाक्य आत्मा परमात्मा की एकता प्रतिभासित करते हैं । श्वेताश्वतर उपनिषद[5] में ब्रह्म को ईश कहा गया है तथा ईश को प्रकृति एवं जीवों का स्वामी कहा गया है । उपनिषदों में ब्रह्म का सगुण, निर्गुण एवं सगुण-निर्गुण उभयात्मक स्वरूप वर्णित हुआ है । लेकिन आध्यात्मिक चिन्तन से निर्गुण ब्रह्म का सच्चा और अन्तिम स्वरूप ही निर्धारित हुआ है । उसके सगुण रूप के लिये ईशान, शम्भु, भव, रुद्र, इन्द्र, हिरण्य गर्भ, प्रजापति, विश्वसृष्टा, विष्णु, नारायण, सविता, धाता, सम्राट, सत्य, प्राण, हंस इत्यादि विभिन्न विशेषण प्रयुक्त हुए हैं ।

जीव और आत्मा-

कुछ उपनिषदों में जीव और आत्मा में अभेद एवं कुछ में भेद माना गया है । भेद मानने वाले उपनिषदों में कहा गया है कि आत्मा और ब्रह्म में तादात्म्य स्थापित हो सकता है पर जीव उनसे पृथक है । शरीर की हृदयगुहा में जीव और

1- कठ तथा तैत्तिरीय उपनिषदों के शांकरभाष्य का उपोद्घात, आनन्दाश्रम, पूना
2- तैत्तिरीयोपनिषद-2/1.
3- बृहदारण्योपनिषद-3/9/28.
4- "सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलान् इति शान्त उपासीत"-छान्दोग्योपनिषद-3/14/1.
5- श्वेताश्वतरोपनिषद-4/5.

आत्मा अंधकार एवं प्रकाश के समान एक साथ विद्यमान रहते है । जीव कर्मानुसार फल का भोक्ता, अज्ञानाधिकारी एवं बन्धनयुक्त है पर आत्मप्रकाश से अज्ञान, बन्धन शिथिल व विनष्ट हो जाते है और मृत्यु, रोग, दुख आदि के चक्कर में नहीं फंसता-1। जीव की चार अवस्थाओं-जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय-में से अन्तिम तुरीय अवस्था में वह आत्मा कहलाता है । यह आत्मा जड़, चेतन से परे ब्रह्म ही है । यह ब्रह्म स्वरूप आत्मा जीव को पांचों स्थिति-अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषों-में से अन्तिम आनन्द मय कोष में निवास करती है । आत्मा की यह अतीन्द्रिय अनुभूति ही उपनिषदों का परमोद्देश्य है-2।

उपनिषदों में आत्मा और जीव के स्वरूप के विषय में अनेक परस्पर विरोधी विचारों का समावेश है । उपनिषदों में कभी ब्रह्म को निर्विकारी माना गया है तो कभी सृष्टि कर्त्ता । कभी आत्मा, परमात्मा को अभिन्न कहा गया है तो कभी भिन्न मानते हुए परमात्मा को सर्वशक्तिमान, आनन्द स्वरूप और आत्मा को सीमित, दुख से पीड़ित कहा गया है । इस तरह उपनिषदों में तीन तरह के विरोधी मतों- आत्मा और परमात्मा दोनों एक है, आत्मा और परमात्मा दोनों पृथक है, दोनों पृथक भी है और एकाकार भी- का प्रतिपादन हुआ है । इन विरोधी मतों के प्रतिपादन का मुख्य कारण इनमें अनेकों ऋषियों के अनुभवों का समावेश होना है । इन्हीं मतों से कालान्तर में अद्वैतवाद, द्वैतवाद और विशिष्टा द्वैतवाद विकसित हुए ।

जगत बन्धन और मोक्ष-

उपनिषदों में माया शब्द का अभाव है । उसके स्थान पर अविद्या शब्द का प्रयोग हुआ है । उपनिषदों के अनुसार जगत के प्रति मोह बन्धन का कारण है, अविद्या है । इससे नानात्व और अहंकार उत्पन्न होता है । अहंकार पुनर्जन्म के बन्धन का प्रमुख कारण है । विद्या से अहंकार नष्ट हो जाता है, बन्धन छूट जाते है और ब्रह्म ज्ञान हो जाता है । ब्रह्म ज्ञान मोक्ष का हेतु है । ब्रह्म-ज्ञान को एकात्म दर्शन और सर्वात्म दर्शन के नाम से अभिहित किया गया तथा मोक्ष को अमृत पद है। इस स्थिति में आत्मा-परमात्मा का एकत्व हो जाने से धर्म-अधर्म, रागद्वेष, सुख-दुख, मोह, माया, भय इत्यादि नहीं रहते, रहती है केवल अनिर्वचनीय शाश्वत शान्ति वह परम प्रज्ञा, निःस्वार्थ संकल्प, निर्विशेष चेतना अनिर्वचनीय आनन्द की अवस्था है-3।

मोक्ष प्राप्ति के साधन-

उपनिषदों में मोक्ष का प्रमुख साधन ब्रह्म साक्षात्कार माना गया है । मानव मन की अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को बाह्य विषयों से निवृत्ति करने हेतु उपनिषदों में कहा गया है कि आत्मा को प्रवचनों, मेधा और बहुश्रुत होने से नहीं अपितु तपस्या, यथार्थ बोध और ब्रह्मचर्य से जाना जा सकता है-4। उपनिषद में उपासना को भी मोक्ष का साधन माना गया है । ॐ पर निरन्तर ध्यान या प्रणव करने से आत्मा का ब्रह्म से साक्षात्कार हो जाता है-5। ब्रह्मदर्शन से प्राप्त आत्मानन्द की तुलना प्रिया प्रियतम के मिलन से की गई है-6आत्मा की यही अतीन्द्रिय अनुभूति वैदिक तत्व

1- छान्दोग्योपनिषद्-7/17/26• [2] श्वे030-2/8•
3- इण्डियन फिलासोफी, भाग-1, राधाकृष्णन, पृष्ठ-152-207•
4- कठोपनिषद-1/2/22, मुण्डकोपनिषद-3/1/5• [5] श्वेताश्वतरोपनिषद-1/1/4•
6- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास [प्रथम भाग] पृष्ठ-433•

ज्ञान का हृदय है तथा भारतीय रहस्यवाद का मूलमंत्र है । औपनिषद तत्वज्ञान का यह कृतान्त सिद्धान्त है॰[1]। उपनिषदों के ब्रह्मज्ञान या विद्या को ब्रह्म विद्या भी कहा गया है ।

पुनर्जन्म और कर्मवाद-

कर्मानुसार व्यक्ति को फल प्राप्ति होती है । जन्म जन्मान्तर तक सत्कर्म में प्रवृत्त मनुष्य को पुनर्जन्म से मुक्ति मिल जाती है । दुष्कर्मों में प्रवृत्त व्यक्ति को निकृष्ट योनि में जन्म लेना पड़ता है । मृत्योपरान्त सभी चन्द्रलोक को जाते है । और कर्मानुसार योनि धारण कर पुनः भू लोक पर आते हैं[2]। उपनिषदों में पुनर्जन्म का अविकसित रूप ही सकेतित है ।

औपनिषदिकोपासना का तत्कालीन सामाजिक जीवन पर प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । जड़ चेतन में ब्रह्म की सत्ता के प्रचार से हिंसा भावना की समाप्ति हुई तथा मोक्ष के सिद्धान्त से वैराग्यमूलक प्रवृत्तियों को बल मिला । कर्मवाद के सिद्धान्त से मानव बन्धन मुक्ति हेतु सत्कर्म में प्रवृत्त हुआ । इससे धर्म एवं संस्कृति का समन्वय हुआ । यह समन्वयवादी दृष्टिकोण सामाजिक धार्मिक जीवन के विविध क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होता है ।

पुराण काल-(इतिहास पुराण काल)

वैदिक युग के याग-यज्ञ और उपनिषद के रूप को ध्यान धारणा के स्थान में पौराणिक युग में सर्वसाधारण के लिये उपयोगी एक नवीन उपासना पद्धति प्रचलित हुई । मृत्तिका, प्रस्तर या धातु से निर्मित प्रतिमा में देवता के आविर्भाव की भावना करके उस विग्रह की पाद्य, अर्घ्य, धूप, दीप, गन्ध, पुष्प और नवैद्य आदि के द्वारा अर्चना करने की विधि प्रवर्तित हुई॰[3]। इस युग में भक्तिमार्ग का प्रवर्तन हुआ । प्रवर्तित उपासना मूलक क्रिया योग के माध्यम से उपासक देव प्रतिमा के द्वारा भगवान की सेवा, पूजा, प्रेमालाप कर सकता है या संकट में उन पर आश्रित रह सकता है उनका चरण वन्दन कर सकता है, भोग लगा सकता है, मंदिर में देव प्रतिमा प्रतिष्ठापन एवं पूजन अर्चन के माध्यम से भुक्ति-मुक्ति दोनों प्राप्त कर सकता हैं ।

रामायण-

रामायण काल तक यज्ञों का अत्याधिक महत्व होने पर भी यह धारणा

1- बृहदारण्यकोपनिषद-4/3/21॰

2- कौषीतकि उपनिषद-1/2/3॰

3- कल्याण "भक्ति अंक"- 32/1/57॰

पनपने लगी थी कि सच्चा यज्ञ सत्य, अहिंसा, संयम, वैराग्य, आचार शुद्धि, तृष्णा तथा क्रोध का परित्याग है । तपस्या कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त भी पूर्णतः मान्य हो चले थे । रामायण धर्मशास्त्र है नीतिशास्त्र और मोक्ष शास्त्र भी है"[1]। रामायण में राम अलौकिक महापुरुष हैं । आदि से अन्त तक सभी ने यहाँ तक कि रावण ने श्री भगवान विष्णु के रूप में श्री राम को भगवत्ता का प्रतिपादन किया है, यद्यपि श्रीराम स्वयं अपने को मानव ही बतलाते हैं"[2]। ब्रह्मा सहित सभी देवताओं ने रामभक्ति को सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए कहा है कि श्री रामोपासना से इहलोक और परलोक में समस्त काम्य वस्तुओं की प्राप्ति होती है"[3]। रामायण में शरणागति को उपासना का सरल उपाय बताया गया है । जो शरीर, मन, प्राण अपना सब कुछ उपास्य को अर्पित कर देता है वहीं उपासक है । उपासना करना उपासक के अधीन और शरणागति का होना उपास्य के अधीन है । शरणागति का सर्वाधिक पूर्ण उदाहरण विभीषण की शरणागति में मिलता है"[4]। दास्यभाव की उपासना का सर्वोत्तम उदाहरण हनुमान जी के गंभीर घोष में मिलता है"[5]। राम के प्रति अनुपम प्रेमनिष्ठा के कारण उनकी चरण पादुकाओं को भरत ने सम्पूर्ण जगत के योगक्षेम का निर्वाहक माना है"[6]। उनके अनुसार चरण पादुकाओं से ही राज्य में धर्म की स्थापना होगी"[7]। भरत द्वारा प्रतिपादित चरण पादुकोपासना का व्रत संसार सागर से पार होने का सुगम उपाय है । भरत ने श्रीराम को चरणपादुकोपासना से तद्‌गत समस्त गुणों को छत्रछाया में स्वस्थ होकर विश्व कल्याण किया । पादुका भगवद् चरण सेविका है, भक्त भगवान का सेवक है, दोनों के सेव्य भगवान हैं, दोनों समकक्ष हैं, सेवक हैं । भरत ने पादुका को आराध्य पद प्रदान किया, पादुका ने उनके लिये राम जी की तरह सेव्य का रूप ग्रहण कर लिया । श्रीराम की पादुका के तात्त्विक निरूपण में इतना ही कहना पर्याप्त है कि यह रामपादस्थ धर्मचारिणी है, समस्त जगत की अधीश्वरी है, समस्त पापों का नाश करने वाली तथा भरत की रक्षिका है"[8]। श्रीराम परमात्मा परात्पर ब्रह्म है और सारा जगत उनका शरीर है"[9]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकि रामायण में भक्ति का सैद्धान्तिक निरूपण, उपासना के स्वरूप का उद्घाटन"[10] सत्य, शील, कर्तव्य"[11] तप, त्याग,

---

1- कल्याण-"भक्ति अंक"- पृष्ठ-377.

2- आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्-वाल्मीकि रामायण[युद्धकाण्ड-117/1

3- अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः ।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ।।-वाल्मीकि रा0[युद्धकाण्ड-]
117/30-31

4- वाल्मीकि रामायण-6/18/33.

5- दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्ट कर्मणः वाल्मीकि रा0[युद्धकाण्ड-42/34]

6- वाल्मीकि रामायण-अयोध्याकाण्ड-112/21.

7- वही-115/16.

8- कल्याण-"उपासना अंक", पृष्ठ-636.

9- वाल्मीकि रामायण-6/117.

10- वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड-18/15.

11- वाल्मीकि रामायण-अरण्यकाण्ड-66/5-7.

अस्तेय,अपरिग्रह,संयम,ज्ञान,वैराग्य,सदाचार,दैन्यादि[1] का अनेक प्रसंगों में वर्णन हुआ है ।

बाल्मीकि जी ने विशेष रूप से अरण्यकाण्ड में यह दिखलाया है कि ऋषि शरभंग से लेकर शबरी तक सबके लिये भगवान की कृपा का द्वार खुला है और भगवत्भक्ति सभी को मुक्ति का अधिकारी बना देती है । रामायण में निहित उपासना,धर्मपरायणता एवं बौद्धिक दार्शनिकता से परिपूर्ण है ।

गीता-

महाभारत का सबसे बड़ा दार्शनिक अंश शान्तिपर्व का मोक्ष धर्म है । इसके अन्तर्गत गीता तो मानो भक्ति को प्रमाणिकता प्रदान करने का प्रमुख साधन है । उपनिषद का सार "गीता" और गीता का सार ब्रह्म बोध का उपाय है । महाभारत में वर्णित कृष्ण का प्रारम्भिक रूप सामान्य मानव का एवं परिवर्धित रूप परब्रह्म,विष्णु या नारायण का है । गीता में कृष्ण का जो परमदेवत्व का परिचायक रूप है उसमें प्रतिपादित उपासना किसी विशिष्ट देवता को न होकर धर्म,जाति,देश,सम्प्रदाय के बन्धनों से निर्मुक्त सार्वभौम उपासना है ।

गीता में मनुष्य को सगुण स्वरूप की ओर चित्त लगाने, सगुण निर्गुण उपासना पद्धतियों में भगवान की स्थिति सुस्पष्ट करने एवं सगुण-निर्गुण दोनों से संयुक्त पुरुषोत्तम रूप में विश्व लीला को सार्थक करने की बात कही गई है[2]। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि दोनों प्रकार के भक्त मुझे ही प्राप्त होते है । दोनों ही मेरे है और मैं दोनों का हूं किन्तु जहां साधना का प्रश्न आता है वहां दोनों में अन्तर है । यद्यपि दोनों का लक्ष्य और साध्य एक ही है फिर भी साधना की दृष्टि से सगुणोपासना सरल,सीधी,सुखद और निर्गुणोपासना टेढ़ी कठिन और दुखद है[3]। ज्ञान मार्गीय निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने वाले उपासकों की दुःखानुभूति का आभास श्रीकृष्ण ने स्वयं दिया है[4] साकार निराकार में कोई अन्तर नहीं जो निराकार है । वही अन्त में साकार बनते हैं जो परमात्मा के जिस रूप की उपासना करता है उसको उसी रूप के दर्शन होते हैं । परमात्मा की प्राप्ति ही मानव जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है[5]। जीवन पर्यन्त अनासक्त भाव से लोकसंग्रह हेतु उचित कर्म करने में मनुष्य का अधिकार है । फल की कामना में कदापि नहीं । निष्काम

1- बाल्मीकि रामायण-युद्धकाण्ड-21/14-16.

2- गीता-6/14.

3- कल्याण-"भक्ति अंक", वर्ष 32,संख्या-1,पृष्ठ-382.

4- गीता-12/5.

5- गीता-18/46.

कर्म ही श्रेयस्कर है।[1] ज्ञान की महिमा के सम्बन्ध में भगवान ने गीता में कहा है कि ज्ञान योग हेतु स्थिति प्रज्ञ होना आवश्यक है।[2] गीता में कहे गये कर्म, भक्ति और ज्ञान के विचारों को लेकर ज्ञान योग पर शंकराचार्य, भक्तियोग पर रामानुजाचार्य और कर्मयोग पर मीमांसकों ने सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया है। ज्ञान भक्ति युक्त कर्म का प्रतिपादन ही गीता का उद्देश्य है। इहलोक में रहते हुए लोकोत्तर परमपुरुष की प्राप्ति हेतु कर्म, ज्ञान, भक्ति तीन पद्धतियाँ प्रमुख हैं।

कर्म और ज्ञान की सार्थकता तथा समन्वय के लिये भक्ति या उपासना को अधिक सरल, व्यावहारिक और सर्वजन सुलभ बताते हुए गीता में श्रीकृष्ण ने उपासकों की आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी चार कोटियाँ निर्धारित की हैं।[3] उपासकों में भी प्रेमाभक्ति द्वारा सभी कर्मों को प्रभु को अर्पित करने वाले भक्तों से प्रसन्न हो उन्हें सम्बोधित करते हैं- मुझमें मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरा पूजनकर और मुझको प्रणाम कर ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा।[4] ऐसे अनन्योपासकों का सारा दायित्व वे अपने ऊपर ले लेते हैं।[5] भक्ति सहित साष्टांग प्रणाम एवं अनन्योपासना द्वारा वे भक्तों को अनायास ही मिल जाते हैं और[6] शरणागति के प्रसाद से भक्तों को परम शाश्वत शान्ति प्रदान करते हैं।[7] भक्तों के प्रेमवश जगतोद्धार हेतु भगवान स्वयं अवतीर्ण होते हैं।[8]

कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों का पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरे की स्थिति नहीं। ज्ञान तथा भक्ति से निरपेक्ष कर्म, कर्म तथा ज्ञान से निरपेक्ष भक्ति और कर्म तथा भक्ति से निरपेक्ष ज्ञान फल प्रद नहीं होते। इसलिये गीता को प्रवृत्ति प्रधान और निवृत्तिप्रधान कहा गया है।[9] भगवान ने ऐसे ज्ञान मूलक भक्तिप्रधान और निष्काम कर्म विषयक धर्म का उपदेश गीता में दिया है कि जिसका पालन आमरणान्त तक किया जावे जिससे बुद्धि (ज्ञान) प्रेम (भक्ति) और कर्त्तव्य का ठीक मेल हो जावे, मोक्ष की प्राप्ति में कुछ अन्तर न पड़ने पावे और लोक व्यवहार भी सरलता से होता रहे।[10] कर्मयोग के अनुसार ममता, आसक्ति कामना को त्यागकर अपने कर्त्तव्य आचरण द्वारा उपासना की जाती है, ज्ञानयोग के अनुसार परमात्मा को जानकर उपासना की जाती है। भक्तियोग के अनुसार

1- (क) गीता-12/6-7.
(ख) कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।। गीता-2/47.

2- गीता-18/20, 4/38, 2/55.

3- गीता-7/16.

4- मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।। गीता-18/65.

5- गीता-6/22, 9/22.

6- गीता-9/64.

7- गीता-18/66.

8- यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।। गीता-4/7-8.

9- भारतीय दर्शन-वाचस्पति गैरोला-पृष्ठ-61.

10- श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य-पृष्ठ-470.

भगवान को मानकर उपासना की जाती है । ज्ञानयोग के द्वारा जो प्राप्ति होती है कर्मयोग के द्वारा भी उसी की प्राप्ति होती है-[1]। गीता के 18 वें अध्याय के 51 से 55 तक के श्लोकों में भगवान श्रीकृष्ण ने कर्म,ज्ञान,भक्ति तीनों के समन्वय,परस्पर पूरक और एकरूपता के वर्णन द्वारा नया सन्देश,नया मार्ग प्रतिष्ठापित किया ।

तात्विक विवेचन-

ब्रह्म-

गीता में सम्पूर्ण यज्ञांगों को ब्रह्म रूप में उपासना के मूल में वेदान्त की एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म को अद्वैतभावना की है । अग्नि में हवन कर समर्पण की क्रिया ब्रह्मरूप है, हवि ब्रह्म रूप है, अग्नि ब्रह्मरूप है, हवन करने वाले पुरुष ब्रह्म रूप है, हवन कर्म ब्रह्मरूप है, अतः हवन करने वाला होता भी ब्रह्म रूप है-[2]। ब्रह्म का विशुद्ध स्वरूप उनके पुरुषोत्तम तत्व में है । गीता का पुरुषोत्तम यद्यपि अखण्ड तत्व है, किन्तु अपनी लीला शक्ति प्रकृति के द्वारा उन्होंने बहुरूप धारण किये है । यही एकत्व और अनेकत्व है । एकत्व ब्रह्मरूप में और अनेकत्व उनके प्रकृति रूप में है-[3]।

ब्रह्म और माया-

गीता के अनुसार भगवान विश्वात्मा रूप में योगमाया से युक्त होकर प्राणिमात्र को यंत्र पर आरूढ़ की भांति घुमा रहे है । माया अविद्या रूप न होकर पुरुषोत्तम का अंश, चिरन्तन और दृश्य जगत की अधिष्ठात्री है-[4]।

ब्रह्म और जीव-

गीता में कहा गया है कि जीवात्मा ईश्वर का अंश है मृत्योपरान्त वह उसी में समा जाता है-[5]।

ब्रह्म और जगत-

ब्रह्म जगत की उत्पत्ति और प्रलय का निमित्त,उपादान कारण है । प्रकृति और पुरुष को अपरा {जड़} और परा {चेतन} प्रवृत्तियां हैं । इन दोनों जड़-चेतन के संयोग से जगत की सृष्टि हुई । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ब्रह्म से प्रकाशित है कोई तत्व इसके परतर नहीं है-[6]।

1- कल्याण "उपासना अंक" पृष्ठ-57.

2- गीता-4/24.

3- "भारतीय दर्शन"-वाचस्पति गैरोला-लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-1962. पृष्ठ-57.

4- गीता-18/61.

5- ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः-गीता-15/7.

6- "मत्तः परतरं नान्यत्किंचादस्ति."

मोक्ष-

गीता में संयत मन, कर्मफल त्याग[1] उपासना[2] शरणागति[3] एवं वैराग्य[4] मोक्ष प्राप्ति के साधन बताये गये है । भगवान ने स्वंय कहा है जो भक्त अपने सभी कर्मों को मुझमें अर्पण करके एकाग्रमन होकर मेरी उपासना करते है उन अपने भक्तों का मैं इस मृत्युरूपी संसार से शीघ्र ही उद्धार कर देता हूँ[5]।

पुनर्जन्म-

उक्त प्रकार के भक्त मुझे ही प्राप्त होते है उन्हें पुनर्जन्म धारण नहीं करना पड़ता है[6]।

पुराण-

इतिहास एवं पुराणों के अनुशीलन के अभाव में वेदों के निगूढ़ अर्थ को समझना दुष्कर ही नहीं असम्भव भी है । महर्षि वेदव्यास ने जनता के कल्याण साधन के लिये वेद में निहित आध्यात्मिक निगूढ़ तत्वराशि को पुराणों में विस्तृत रूप से नाना प्रकार के आख्यान उपाख्यानों की सहायता से प्रकाशित किया है[7]। पुराणों से परिपोषित, परिष्कृत होती हुई वैदिकोपासना ही वर्तमान काल की हिन्दू धर्मोपासना है । वैदिक काल के इन्द्र, वरूण, अग्नि के स्थान पर त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपासना की जाने लगी । भारतीय संस्कृति के सार्वदेशिक सार्वकालिक, सर्वमान्य, व्यापक प्रचार-प्रसार एवं लोकप्रियता के रहस्य के मूल में पुराणों की गम्भीर, तथ्यात्मक, सर्वांगीण धार्मिक विवेचना ही निःसन्देह समर्थ है । इस प्रकार वेदों के सत्यं, ज्ञानं, अनन्तं, गुणातीत ब्रह्म को पुराणों ने सर्वसाधारण के समीप लाकर मनुष्यत्व में देवत्व, मानवता में भगवत्ता के बोध को जागृत किया । पुराणों में भक्त का भगवान के प्रति अखण्ड अनुराग, परानुरक्ति, शरणागति एवं प्रख्यात नवधाभक्ति विशदतया प्रतिपादित है ।

देव प्रतिष्ठा-

पुराणों में पंच देवोपासना- विष्णु, शिव, शक्ति, गणपति तथा सूर्य-सर्वमान्य है । पौराणिक युग में त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु, और महेश सृष्टि के उत्पादक, संचालक और संहारक रूप में प्रतिष्ठित हैं । तीनों में परस्पर सौहार्द और एकता की भावना है । अभीष्ट सिद्धि हेतु सभी देवता गणेश जी की पूजा करते हैं । धूप-दीप, दूध-दही, पुष्प-फल, मूल, मोदक से इनकी पूजा का प्रचलन था ।

1- गीता-2/51

2- गीता-9/25.

3- गीता-18/62.

4- गीता-15/4.

5- मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।।-गीता-12/8.

6- मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते-गीता-8/16.

7- कल्याण "भक्ति अंक"-पृष्ठ-55.

पौराणिक युग में सूर्योपासना से रोगमुक्ति और मोक्ष प्राप्ति की धारणा व्याप्त थी । मंत्र-पाठ, फल, अर्घ्य, अक्षत, जवा पुष्प, मदार के पत्ते, लाल चन्दन, कुमकुम, नैवेद्य, सिन्दूर, कदली पत्र आदि से सूर्यपूजा का प्रचलन था । लक्ष्मी स्त्रियों के सौन्दर्य शील, सदाचार और सौभाग्य में नारायणी शक्ति रूप में विद्यमान हैं । दुर्गा-महामाया, आर्या, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेमदा भाग्यदा आदि रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस युग के देवता मानव रूप में प्रकट होकर मानवोचित कार्य करते हैं, पथ प्रदर्शन करते है एवं धर्मोपदेश देते हैं । पौराणिकोपासना का आधार तत्व अवतारवाद है । भगवान का अवतार अज्ञ जीवों के निःश्रेयस या लीलानन्द के निमित्त होता है । इस युग में अवतारवाद को केन्द्र बनाकर उपासना को विशेष परिपुष्टि प्राप्त हुई है ।

पौराणिक काल में लौकिक, वैदिक एवं आध्यात्मिक भक्ति का प्राधान्य रहा है जिसमें भारत की प्रायः सभी उपासना पद्धतियों का समावेश हो गया है । लौकिक उपासना के अन्तर्गत चन्दन अक्षत, रोली, धूप, दीप, नैवेद्य, घी, दूध रत्न, माला, आभूषण, सुवर्ण, हार, नृत्य, संगीत, वाद्य, भक्ष्य-भोज्य आदि से पूजा अर्चना होती है । वैदिकोपासना के अन्तर्गत मंत्रों का जप, यज्ञ, संहिताओं का अध्ययन एवं देवनिमित्त किये गये सभी कर्मों की उपादेयता का समावेश है । आध्यात्मिक भक्ति की परिधि में सांख्य और योगज समाविष्ट हैं । सांख्यदर्शन प्रकृति पुरुष की एवं योगज अभ्यास द्वारा ध्यान को प्रश्रय देता हैं । साधन की दृष्टि से मानस, वाचिक, कायिक उपासना को प्रधानता रही । ध्यान और धारणा-मानस, मंत्र, जप, वेद-पाठ आदि वाचिक एवं मन-इंद्रिय के शमनार्थ व्रत, उपवास कायिक उपासना प्रचलित थी । मोक्षेच्छा हेतु आत्म समर्पण, सात्विकी यश-ऐश्वर्य हेतु पूजा राजसी एवं अहंकार दर्पों से आडम्बर के लिये की गई उपासना तामसी रूप में प्रचलित थी ।

धार्मिक और दार्शनिक विषयों को सर्वसाधारण के लिये बोधगम्य बनाने हेतु विग्रह और षोडशोपचारों द्वारा मूर्ति पूजन पौराणिकोपासना का नैसर्गिक आधार है । पुराणों में मंदिरों के निर्माण, मूर्तियों की स्थापना और पूजन पर विशेष बल दिया गया है। प्रतीकोपासना के माध्यम से उपासक रोमांचित व दे द्रवीभूत हो सकता है । आनन्दाश्रु बहा सकता है । हंसना, रोना, गाना इत्यादि क्रियाएं मूर्ति-पूजा में निहित रहती हैं ।

पौराणिकोपासना में आत्म शुद्धि, परमात्मचिन्तन एवं मरणोत्तर सद्गति की सम्भावना में किये गये व्रतों की सम्पन्न साध्य थी । व्रत पालन से मिलने वाले लाभों के परिणाम स्वरूप ही इनकी लोकप्रियता में वृद्धि हुई है । पुराणों में स्वर्ग-नरक की ~~रूप~~ से कल्पना भी की गई है । मानव के पुण्य पाप ही स्वर्ग और नरक हैं[1]। पुराण सगुणोपासना के प्रतिपादक हैं । व्रत, पर्व,

---

1- विष्णु पुराण-2/6/44.

तीर्थयात्रा,मूर्ति पूजा तथा कलात्मक मंदिर इसके प्रबल साक्षी हैं । तथ्य यह है कि आजकल के हिन्दू समाज के संचालन तथा नियमन,पूजा तथा उपासना आचरण तथा व्यवहार का विधान पुराणों के अनुसार ही होता है[1] ।

पुराणों में कौटुम्बिक और सामाजिक संश्लिष्टता के समुचित विधान मिलते है । पुराणों में उपासना का जो रूप मिलता है उससे धनी,निर्धन,उच्च -नीच जाति के सभी व्यक्ति अपना सर्वांगीण कल्याण करने में समर्थ हो सकते हैं । इस सार्वजनीन धर्म के प्रचार से चाण्डाल और शूद्र तक ब्राह्मण से बढ़कर हो सकते हैं और ईश्वर भक्ति विहीन होने पर ब्राह्मण भी चाण्डालाधम हो सकते हैं[2]। वर्तमान समय में भारत में पौराणिकोपासना का प्रचलन है ।

भागवत-

वैदिक काल के मूल स्रोत कर्म,ज्ञान,उपासना का पौराणिक काल में आकर उपासना में कर्म और ज्ञान का समन्वय हुआ तथा धर्म की अन्तरवर्तिनी धारा के साथ विशुद्धतम ईश्वरप्रेम का उदघोष हुआ । सर्वप्रथम गीता के बारहवें अध्याय में एवं अन्यत्र भी भक्ति का मानदण्ड-वासनारहित श्रीकृष्ण प्रेम ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है- रखा गया है । महाभारत की देन श्रीमद् भागवत में तो भक्ति का मुख्य सिद्धान्त- भक्ति प्राप्त पुरुष के लिये कोई भी साधन और साध्य अवशिष्ट नहीं रह जाता है- निरूपित किया गया है । श्रीकृष्ण प्राप्ति का उपाय भक्ति और भक्ति का प्रयोजन श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति बताया गया हैं ।

भागवत में निहित उपासना के अनुसार आध्यात्मिक जीवन के प्रारम्भिक स्तर पर हमारा भगवत्प्रेम दुर्बल और मन्द रहता है लेकिन सांसारिक मोह-जाल की ग्रन्थि टूटते ही हृदय की शुद्धि से भगवत्प्रेम दृढ़तर होकर अन्त में भगवत्साक्षात्कार हो जाता है । भागवत में इस शुद्ध प्रेम के उपार्जन को ही उपासना कहा गया हैं ।

भागवत में भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित हुई है[3]। स्वयं भक्ति ने ज्ञान, वैराग्य को अपना पुत्र बताया है । भक्ति के द्वारा गोपियाँ,गायें,वृक्ष,पर्वत, पशु-पक्षी,कालिय नाग तथा अन्य मूढ़ बुद्धि जीव भी भगवत्साक्षात्कार कर लेते हैं[4]। जीवमात्र के हे परित्राणार्थ एवं पृथ्वी के भार हरणार्थ भगवान अवतरित होते हैं । श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं|उनका पूर्णावतार षडैश्वर्यों से पूर्ण है । उनके अन्तहीन ऐश्वर्य को चर्मचक्षुओं से नहीं देखा जा सकता । श्रीकृष्ण का भजन करने वालों के लिये उनके गुणों में माधुर्य की प्रधानता है । गोपांगना माधुर्यमूर्ति श्री भगवान की प्रियतमा उपासिका है[5]। उनका माधुर्य भाव योगिश्वरों की ध्यान समाधि से भी बढ़कर है । भगवान ने स्वयं उनके महान माधुर्य को अनुभव करके

- -

1- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास-प्रथमखण्ड,पृष्ठ-498.

2- वृहन्नारदीय पुराण-32/39.

3- श्रीमद भागवत-11/20/31.

4- वही,11/12/8.

5- कल्याण,भक्ति अंक-32/1/58,पृष्ठ-165.

रासलीला के अवसान में कहा था-मैं तुम लोगों के प्रेमऋण का ऋणी होकर चिर-काल के लिये तुम्हारे चरणों में बंध गया । तुम लोगों ने दुरन्त दुश्छेद्य गृह शृंखला, समाज बन्धन,लोकधर्म,वेदधर्म,देहधर्म तथा आर्य पथ को त्यागकर मेरे प्रति जो प्रेम प्रदर्शित किया है, मैं कदापि तुम्हारे इस अविच्छिन्न,अनवद्य,अव्यभिचारी प्रेम का बदला नहीं चुका सकता । इस ऋण के परिशोधन का साधन मेरे पास नहीं है[1]। भक्त जब सारे कर्मों को त्यागकर श्रीकृष्ण प्रेमभक्ति में लीन हो जाता है तब परा भक्ति का उदय होता है । परा भक्ति ही साधन भक्ति या नवधा भक्ति कहलाती है जो नौ प्रकार की बतलाई गई है[2]। नवधाभक्ति नाम महिमा (श्रवण,कीर्तन, स्मरण) मूर्ति उपासना (पादसेवन, अर्चन,वन्दन) श्रद्धा विशेष (दास्य,सख्य,आत्म निवेदन) में विभक्त है । उपर्युक्त साधना प्रणाली से भक्ति करने वालों के चित्त द्रवित हो जाते हैं और एक नवीन प्रेम का उदय होता है । जिससे वह कभी हंसता है,कभी रोता है, कभी गाता है, कभी उन्मत्त हो नाचता है तथा कभी उच्चस्वर से प्रलाप करने लगता है । वह जनसाधारण से बहिर्मुख होकर कार्य करने लगता है[3]। रैकैक ने प्रेमसम्बन्ध को अन्तर एवं बाह्य अनुभूति को व्यक्त किया है[4]। ब्राउनिंग ने भी ईश्वर को प्रेमस्वरूप परमात्मा माना है[5]। इस नवीन प्रेम के सम्बन्ध में भगवान ने उद्धव से कहा है कि जिस उपासक में यह नवीन प्रेम विकसित होता है वह संसार को पवित्र कर देता है[6]। वह मुक्ति की कामना नहीं करता सदा भगव-त्सेवा के परमानन्द में रत रहने की आकांक्षा करता है तब इस अवस्था को भक्ति निर्गुणी या अहैतुकी भक्ति कहलाती है । श्रीमदभागवत में उपासना के चरमोत्कर्ष का जो परिचय मिलता है उसमें उपासना को मुक्ति के साधन के रूप में नहीं बल्कि उपासना से प्रसूत प्रेम को उपासक के साध्यरूप में प्रतिपादित किया गया है ।

तात्त्विक विवेचन-

निर्गुणी भक्ति के अधिकारी सभी जीव होते हैं क्योंकि जीवात्मा को ईश्वर का अंश कहा गया है । श्रीकृष्ण पर ब्रह्म हैं[7]। जो जगत हित हेतु अपनी योग माया से सांसारिक जीव के समान जान पड़ते हैं । इनसे कोटि कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न होकर विद्युत हो रहे हैं । वह ब्रह्म,परमात्मा और भगवान त्रिविध शब्दों में अनुभूत होता है[8]। तादात्म्य साधन द्वारा ज्ञानी उसे ब्रह्म, बिम्ब ज्योतिरूप से योगी उसे परमात्मा और भक्त सर्वगुण परिपूर्ण साधना से उसे

1- भागवत दशम स्कन्ध-46 वें अध्याय में वर्णित एवं कल्याण के "भक्ति अंक" के पृष्ठ-167 से उद्धृत ।

2- श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।। श्रीमदभागवत-7/5/23.

3- श्रीमद् भागवत-11/3/32.

4- "I live,yet not I, but God in me".

5- "God thou art love, I love my faith on thee"-Browning.

6- श्रीमद भागवत-11/14/24.

7- वही-10/14/55.

8- वही-1/2/11.

भगवान कहते हैं । ब्रह्म को हेय प्राकृत गुणों से रहित होने के कारण निर्गुण तथा व्यापक होने के कारण निराकार एवं उपासना द्वारा व्यक्त हो जाने पर साकार कहा जाता है ।

स्पष्ट है कि परमतत्त्व श्रीकृष्ण है एवं सभी जीव उनके विभिन्नांश है । "मात्र श्रुति, वहिन, स्मृति और पुराण-इतिहास आदि आचार्यगण भी उन्हीं के अनुगामी हैं ।" उपासकों की धारणाओं के अनुसार उनके परमतत्त्व के विविध रूप शास्त्रों में वर्णित हैं ।

आदिकाल-

आदिकाल के प्रारम्भ का लगभग 150 वर्षों का साहित्य धर्म, आध्यात्मिक तथा नीति परक साहित्य है । इस युग में सिद्ध,नाथ तथा जैन आदि की रचनाओं में हिन्दी का आदि रूप प्राप्त होता है । सिद्धों की संध्या भाषा,नाथों की सधुक्कड़ी भाषा और जैनियों की अपभ्रंश भाषा में साहित्य रचा जा रहा था । जिनका उद्देश्य किसी न किसी प्रकार आत्म शुद्धि,आत्म परिष्कार करना था । आदिकाल में वैदिक यज्ञ,मूर्तिपूजा तथा जैन एवं बौद्ध उपासना पद्धतियाँ एक साथ प्रचलित थी ।

सरहपा-

चौरासी बौद्ध सिद्धों में प्रमुख,सरहपा वज्रयानी होते हुए भी उसकी अंगारिकता से पूर्ण मुक्त योगमार्गी है । उन्होंने वज्रयानी, जैन, शैव साधुओं तथा वेदान्तियों के आडम्बर की भर्त्सना की और गुरु सेवा को महत्व दिया । इनके मतानुसार भोग और निवृत्ति और सहज भोग से ही निर्वाण फल की प्राप्ति हो सकती है ।-इन्हें हिन्दी का आदि कवि भी माना गया है । सरहपा में सिद्धों का उपासनात्मक स्वरूप-कि सहजावस्था की प्राप्ति सिद्धि की पूर्णता है- प्रस्तुत उदाहरण में दृष्टव्य है-

> जह मन पवन न संचरइ,रवि शशि नाह पवेश ।
> तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेश ।।
> पण्डि अ सअल सत्थ बक्खाणई ।
> देहहि बुद्ध बसन्त न जाणइ ।।

अर्थात सहजावस्था में मन एवं प्राण संचरित नहीं होते । सूर्य,चन्द्र भी वहाँ प्रवेश के अधिकारी नहीं हैं । निम्न उक्ति इसी सत्य की प्रमाणित करती है-

> नाद न बिन्दु न रवि न शशि मण्डल,
> चिअराअ सहावे मूकल ।
> उजु रे उजु छाड़ि मा लेहु रे बंक,
> निअहि बोहिमा जाहु रे लांक ।
> हाथे रे कांकाण मा लोड दापण,
> अपणे अपा बुझतु निअ-मण ।

सिद्ध एवं नाथोपासना-

सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान मत का समर्थन किया । वज्रयान,सहजयान और सिद्ध सम्प्रदाय से होता हुआ नाथों तक पहुँचा और नाथों से सन्तों में परिणत हुआ । सिद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ (मछन्दरनाथ) तथा उनके शिष्य गोरखनाथ प्रसिद्ध हुए । मत्स्येन्द्रनाथ हठयोग के साथ नारी-साहचर्य और सुरापान की भोग-साधना द्वारा सिद्धि प्राप्ति में विश्वास करते थे । ये वज्रयान के इस सिद्धान्त के- "कि देहरूपी वृक्ष के चित्तरूपी अंकुर को विशुद्ध विषय रस के द्वारा सिंचित करने

पर यह वृक्ष कल्पवृक्ष बन जाता है, और आकाश के समान विमल निरंजन फल फलता है-मुक्ति समर्थक है। सिद्धाचार्यों के अनुसार राग से बन्धन होता है तथा मुक्ति भी राग से ही होती है, वैराग्य से नहीं। अतः चित्त ही संसार और निर्वाण दोनों हैं[1]। शिव शक्ति के सामरस्य का द्योतक नारी साहचर्य ही द्वैत भाव के परित्याग और अद्वैत भाव की अनुभूति जगाता है। यह अभेद ही सिद्धोपासना का परमोद्देश्य है।

नाथोपासना-

मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ अपने गुरु के उक्त सिद्धान्तों में व्याप्त व्यभिचारों के विरोधी थे। इनके द्वारा निरूप्त मार्ग "योग मार्ग" कहलाया। नाथपंथ में योग को सन्मार्ग तथा अन्य मार्गों को पाखण्ड मार्ग बताया गया है[2]। नाथ सम्प्रदाय की धार्मिक प्रवृत्तियाँ लोकप्रिय होकर प्रचारित और प्रसारित हुईं। परमपुरुष "नाथ" की संज्ञा से अभिहित होते है तथा सगुण-निर्गुण एवं द्वैत-अद्वैत भावना से पृथक होने के कारण परमतत्व के रूप में गृहीत हैं। साधक का नाथ से ऐक्य प्राप्ति ही उसके जीवन का मुख्य लक्ष्य है, जिसका साधन है-योग। यह योग ही हठयोग है। हठयोग का अभिप्राय है "ह" यानि सूर्य अथवा प्राण और "ठ" यानि चन्द्र या अपान। इस तरह सूर्य,चन्द्र का योग हठयोग है। इस योग द्वारा स्वार्थ और परमार्थ एवं भोग और त्याग का मंजुल समन्वय किया जा सकता है। नाथोपासना में समाधि द्वारा मन की एकाग्रता ही उपयोगी आध्यात्मिक सिद्धान्त है। विकृत वातावरण में भी जिसका मन शुद्ध रहे वह सच्चा उपासक है-

> नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।
> ऐसे मन लै-जोगी खेलै, तब अन्तरि बसै भण्डारा।।
>
> x x x
>
> अन्जन माँहि निरंजन भेट्या तिल मुख भेट्या तेलं।
> मूरति माँहि अमूरति परस्या,भया निरन्तरि खेलं।।

"गोरखनाथ का पंथ षटदर्शनों पर आधारित है। उनकी मान्यता है कि आत्मा की खोज में कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं, है क्योंकि वह अपने भीतर-काष्ठ के भीतर अग्नि,बीज के भीतर वृक्ष एवं पुष्प के भीतर के गन्ध की भाँति व्याप्त व अन्तर्निहित है। उन्होंने कल्पित देवी देवताओं की आराधना,वर्ण-विभेद व साम्प्रदायिक संकीर्णता का विरोध किया और ब्रह्मचर्य आत्म संयम से युक्ताहार-विहारादि को स्वीकार किया था[3]। नाथोपासना में गुरुमहात्म्य, इन्द्रिय-निग्रह,मनः साधना,प्राण-साधना,कुण्डलिनी जागरण,वैराग्य और शून्य समाधि आदि विषयों में नीति और साधना का स्वरूप विद्यमान है। नाथपंथी

1- अनल्प संकल्प तपोभिभूतः प्रभञ्जनोन्मत्त तडित् चल च।
रागादि दुर्वार मलावलिप्तं,चित्तं विनिःसारयुवाच वज्री [प्रज्ञोपायविनिश्चय-सिद्धिः 4/22]

2- सन्मार्गश्च योगमार्गःतदितरस्तु पाषण्डमार्गः [सिद्ध सिद्धान्त पद्धति]

3- गोरख बानी [प्रकाशक का वक्तव्य] पृष्ठ 6-7.

सिद्धों की अपेक्षा अधिक नास्ति परक और आत्म संयमी थे। सिद्धोपासना से नाथोपासना और नाथोपासना की प्रेरणा से सन्तोपासना का उदय हुआ। "हिन्दी के जन्म और और उसकी आरम्भिक अवस्थाओं के रूप से स्पष्ट है कि हिन्दी की निर्गुण-धारा का मूल नाथ सम्प्रदाय में से होकर सिद्धों में है। सिद्धों ने जो तत्त्व दिये वे नाथों के द्वारा संशोधित हुए और अधिकाधिक लोक भूमि के निकट लाये गये और जब वे लोकवार्ता के अंग बन गये तब उन्हें हिन्दी की निर्गुण धारा ने ग्रहण किया"[1]।

नाथ-सिद्धों में प्रत्यक्ष सगुणोपासना की मान्यताएँ न होकर नाद-ब्रह्म की चर्चा है। उन्होंने नाद से सृष्टि का प्रस्फुटन एवं उसी में सृष्टि का लय होना माना है। शिव के योगरूप की सुन्दर कल्पना में उनके प्रति नमस्कारात्मक उक्तियों में परोक्ष रूप से भक्ति भाव निहित हैं। सिद्ध,नाथ निराकार ब्रह्म की सिद्धि में विश्वास करने वाले,नाड़ी चक्र वाले साधनात्मक रहस्यवाद के अनुयायी तथा वेदान्ती अद्वैतवाद से प्रभावित थे। सिद्ध-नाथोपासना में कहीं हठयोग पर अधिक बल दिया गया है तो कहीं गुह्यतम से प्रभावित पहेलियों पर,कहीं विशुद्ध ज्ञान पर तो कहीं उलटबासियों को ही सब कुछ समझा गया। सब मिलाकर इनकी उपासना का स्वरूप योग मार्ग पर आधारित है।

जैनोपासना-

भारतीय संस्कृति के व्यापक परिवेश में आदिकाल में जैनोपासना का विशेष महत्त्व रहा है। जैनों के आदि मूल मंत्र-

"णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोये सव्व साहूणं ।।"

में अरहन्त,सिद्ध,आचार्य,उपाध्याय तथा साधुओं आदि पंचपरमेष्ठी को नमस्कार किया गया है। जैन धर्म की सभी शाखा-प्रशाखाएँ उक्त मंत्र को मानती हैं। अर्हन्त कर्मों को जीतकर जिन कहलाते हैं। जिन द्वारा प्रतिपादित धर्म ही जैन धर्म है। अर्हन्तों का अभिषेक जल,दूध,दही,घी या रस से किया जाता है तथा जल,चन्दन अक्षत,पुष्प,नैवेद्य,दीप,धूप और फल आदि द्रव्यों से उनकी पूजा होती है। जैनोपासना का प्रमुख लक्ष्य शारीरिक-मानसिक शुद्धि द्वारा मोक्ष प्राप्ति करना है। व्रतों में-अहिंसा,अस्तेय,सत्य अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य तथा धर्म के लक्षणों में- क्षमा,मार्दव आर्जव,सत्य,शौच,संयम,तप,त्याग,आकिंचन और ब्रह्मचर्य आदि हैं। जगत एवं लौकिक विभूतियाँ इनकी उपासना में उपेक्षणीय हैं। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक चरित्र आदि त्रिरत्नों को मोक्ष का साधन माना है। केवल ज्ञान जैन उपासना का अन्तिम पर्यवसान है।

1- मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन-डॉ० सत्येन्द्र,पृष्ठ-17.

तात्त्विक चिन्तन-

भारतीय चिन्तन की एक विचार धारा परमब्रह्म को एक मात्र सत्य मानकर दृश्यजगत को माया मानती है । दूसरी विचारधारा ने दृश्यजगत को एक मात्र सत्य माना अदृश्य आत्मा परलोक आदि को कुछ नहीं । एक विचार धारा वस्तु को नित्य मानती है तो दूसरी क्षणिक । जैन चिन्तकों ने दोनों ही विचार धाराओं का समन्वय करके दृश्यमान जगत और अदृश्य आत्मा दोनों को वास्तविक मानकर भारतीय चिन्तन को एक नया मोड़ दिया ।

बहुजीववाद-

दृश्यमान जगत के चेतन द्रव्य की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है । वे सभी इकाई रूप में स्वतन्त्र जीव हैं, इनका अस्तित्व अनश्वर है । जैन चिन्तकों के इस बहु-जीववाद के प्रतिपादन से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सत्ता का बोध हुआ और व्यवहार जगत को स्थिरता प्राप्त हुई ।

वस्तु स्वरूप-

वस्तु को नित्य-अनित्य न मानकर उसमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों गुण एक साथ माने[1]।

जीव-

जीव अपने कर्मों का स्वयं कर्त्ता, भोक्ता, संसारी तथा सिद्ध है । स्वभाव से स्वदेह परिमाण है, अमूर्तिक उपयोगमय तथा उर्ध्वगति भी है"[2]।

जगत-

जीव के साथ अजीव को जैनोपासना में स्वीकार किया गया है । यह जगत-जीव, पुद्गल, आकाश, धर्म, अधर्म, काल आदि छह द्रव्यों से युक्त है । "यह अनादि काल से है और अनन्तकाल तक रहेगा । न इसे किसी ने रचा है, न कोई इसकी रक्षा करता है और न कोई इसे नष्ट कर सकता है । सभी द्रव्य स्वयं परि-णमन शील हैं, अतएव संसार भी स्वयमेव परिणमन शील है"[3]। जैनोपासना में जिन भक्ति, अहिंसा, सदाचार तथा कर्मफल का क्षय चारों तत्व मुख्य रूप से समाविष्ट हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि सिद्धों, जैनों और नाथों की उपासना का लक्ष्य एक ही था- परम सुख शान्ति की प्राप्ति, परन्तु मार्ग अलग-अलग थे । सिद्धों ने सांसारिक भोग को महासुख, जैनों ने लौकिक सुखों की निस्सारता तथा नाथों ने वैराग्य-भावना को ईश्वर साक्षात्कार का साधन माना हैं ।

शिव-

वैदिक रुद्र पौराणिक तथा परवर्ती काल में शिवरूप में प्रतिष्ठित होते गये । भारतीय उपासना क्षेत्र में शिव निर्गुण-निराकार परमतत्व के रूप में गृहीत हैं, पर उनका सगुण रूप केवल भक्तिकाव्य में ही वर्णित है । शिव

1- उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्- उमास्वामी-तत्वार्थसूत्र 5/30।

2- "जीवो उव ओ गमओ अमुत्तिकत्ता सदेह परिमाणो ।
भोक्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।।"

3- संस्कृति [आदित्यनाथ का अभिनन्दन ग्रंथ], पृष्ठ 94, 1969.

को परमयोगी कहा गया है । उनकी योग सम्बन्धी प्रवृत्तियों-प्राणायाम, ध्यान,प्रत्याहार,धारणा और स्मरण- का इस युग में विकास हुआ । इसके साथ ही साथ इस युग के लोकजीवन में उनके महाशक्ति शाली,संहारकारी और परम मंगलकारी पौराणिक रूप की उपासना का भी व्यापक प्रचलन था । शिव उपासना के रूपों का वैदिक परम्परा के आलों में पौराणिक परम्परा के शैव भक्तों में, वाममार्गी और दक्षिण मार्गी तांत्रिकों में भावना, विश्वास और लक्ष्य के अनुसार क्रमिक विकास होता गया । पौराणिक साहित्यानुसार ज्ञान,वैराग्य,ऐश्वर्य,तपस्या,क्षमा,धृति,सृष्टि-योग्यता,शासन तथा आत्म-स्वर्ण के गुण शिव में निहित हैं । आदिकाल में शिवोपासना के स्वरूप चित्रण में शिवपुराण का आधार ग्रहण किया गया है-

> महादेव सिर नौरिया, सब जग मान्यौ चित्तु ।
> वनिता सहित प्रसन्न है, किय पुत्री से पुत्र ।
> जाहि धाम नौरेंगि सुत, हम दिन्नव वरदान ।
> इक्को बार समता ओछ करे, नर सुर कह सम्मान"[1]

आदिकाल में शिव के सौम्यरूप की अपेक्षा उग्र रूप ही अधिक वर्णित हुआ है । इस सन्दर्भ में उनके तांत्रिक स्वरूप की उपासना भी प्रचलित रही । शुद्ध शैव सम्प्रदाय में भक्त गंगाजल,कच्चा दूध,चन्दन,सुगन्धित पुष्प,बिल्व पत्र,आक के फूल,धतूरा से पूजा करता है ।

शक्ति-

उपनिषद काल में शक्ति का प्रादुर्भाव,पौराणिक युग में स्वरूप निर्धारण तथा परवर्ती युगों में उत्तरोत्तर विकास हुआ । शक्ति आदिकाल या वीरगाथाकाल की बहुजन आराध्या देवी रहीं है । इस युग के कवियों ने उन्हें दुर्गा,काली,चामुण्डा,राधा,पार्वती महामाया तथा सरस्वती आदि विभिन्न रूपों में विभिन्न कार्यों को सम्पादित करते चित्रित किया है । इस सृष्टि का उद्भव,विनाश,दुष्टों का दलन और पापों का नाश करने वाली-शक्ति ही हैं । शक्ति अपने सौम्य रूप में मंगल कारिणी,संकटहारिणी एवं जगत्तारिणी है तथा विद्या,बुद्धि और बल प्रदान करने वाली है । आदिकाल में बलि की प्रधानता थी तथा नरसंहार से मनोरथ सिद्धि का विश्वास जनमानस में व्याप्त था । साथ ही यह भी मान्यता थी कि वही जिव को बन्धन युक्त तथा बन्धन मुक्त करती हैं । वह भक्तों को पुत्र और शत्रुओं से विजय दिलाती हैं । वह भोग, योग,मुक्ति प्रदाता रूप में भी वर्णित है[2] इस प्रकार "सांख्य में पुरुष के साथ प्रकृति,वेदान्त में ब्रह्म के साथ माया,तांत्रिक मत में शिव के साथ शक्ति तथा पुराणों में विष्णु के साथ लक्ष्मी,ब्रह्मा के साथ सरस्वती,शंकर के साथ पार्वती राम के साथ सीता और कृष्ण के साथ राधा की विद्यमानता शाक्तिवाद के व्यापक प्रभाव का सूचक है"[3]।

1- परमाल रासो,34/58-39.
2- देखिये पृथ्वीराज रासो का 0-2019/12.
3- ब्रज के धर्म सम्प्रदाय [प्राचीन काल],डॉ0 प्रभुदयाल मीतल,पृष्ठ 71.

विष्णु-

विष्णु की उपासना देवता और मानव दोनों करते है । वे आर्यों के उच्चवर्ण के देवता रहे हैं तथा दैत्य-दानवों के संहारक कहे जाते हैं । दक्षिण के आलवार भक्तों ने भारत में ईसा की सातवीं से नवीं शताब्दी तक विष्णु प्रेमोपासना की रसमयी धारा प्रवाहित की थी । जिनके सिद्धान्त समस्त वैष्णव सम्प्रदायों की पृष्ठभूमि है । दसवीं शताब्दी में विष्णु भक्ति की धारा उत्तर भारत में वेद,उपनिषद,ब्राह्मणग्रन्थों के प्रमाणों से पुष्ट होकर आई । इस युग में विष्णु के सगुण रूप की और उनके दो अवतारों राम और कृष्ण की महत्ता प्रतिपादित की गई । विष्णु भक्तों ने जीव-जगत की सत्यता सिद्ध की तथा मायावाद का खण्डन किया । खण्डन-मण्डन की नीति के फलस्वरूप कई वैष्णव सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ: जैसे- अद्वैतवाद,विशिष्टा द्वैतवाद,शुद्धाद्वैतवाद, द्वैतवाद,भेदाभेद तथा अचिन्त्य भेदाभेदवाद । इस युग की विष्णु उपासना में कुल और जाति का भेद न होने से उपासना की सरलता,उत्कृष्टता,विश्वास, श्रद्धा,दैन्य,अकिंचनता तथा उपास्य की महत्ता का उल्लेख मिलता है ।

भक्तिकाल-

हिन्दू जैन,बौद्ध,पारसी,यहूदी,ईसाई धर्मों के सम्प्रदायों,उपसम्प्रदायों के निर्माण और भागवत सम्प्रदाय के प्रसार-प्रचार के परिणाम स्वरूप भक्ति-काल का सूत्रपात हुआ । तदनुसार आदिकालीन सिद्धों,जैनों,तथा नाथों की प्रचलित साधना पद्धतियों के साथ-साथ नवीन उपासना-पद्धतियों का समन्वय हुआ । इस समन्वयात्मक प्रवृत्ति के फलस्वरूप भक्तिकाव्य रचा ही नहीं गया अपितु उसका विपुल भण्डार भी समृद्ध हुआ । भक्तिकाल में उपासना की प्रवृत्या-नुसार दो श्रेणियां हुई-

1- निर्गुणोपासना.
2- सगुणोपासना.

निर्गुणोपासना-

निर्गुणोपासना के मूल स्रोत श्वेताश्वेतर[1] उपनिषद है । निर्गुणो-पासना अनादि,अनन्त,अनाम,अजात,निराकार-निर्विशेष ब्रह्म का नाम जाप है । इस उपासना में गुरु,साधु,सेवा,ईश्वर नामस्मरण एवं दैन्य की महत्ता प्रतिपादित की गई है । नाम जप, मानसिक-भक्ति,प्रेम,अभेद का अभाव,सहज साधना,सात्त्विक आचरण मुक्तिदाता सद्गुरु की असीम कृपा को ब्रह्म साक्षा-त्कार की सीढ़ियाँ मानी हैं । यम-नियम,ज्ञान,ध्यान-निर्गुणोपासना के साधन माने गये हैं । भक्तिकाल में निर्गुणोपासना के दो रूप हो गये-

1- ज्ञान पर आधारित उपासना एवं
2- प्रेम पर आधारित उपासना-

1- श्वेताश्वेतर उपनिषद,3/11.

1- ज्ञान मार्गी सन्तों की साधना नाथ-साधना का ही परिष्कृत रूप है। इन सन्तों ने नाथ पंथियों की योगसाधना, उपनिषदों के ब्रह्मज्ञान तथा भिन्न-भिन्न पौराणिक कथाओं को अपनाया। इन्होंने सामाजिक कुरीतियों, मूर्ति पूजा, आडम्बरों का विरोध किया। इनकी निर्गुणोपासना का परम उद्देश्य था-भाव-अभाव, सत-असत तथा निर्गुण-सगुण के द्वैतभाव से ऊपर उठकर ज्ञान की अनुभूति के माध्यम से सत्य को देखने का प्रयास करना। सन्तों ने बौद्धों की प्रज्ञा को ज्ञानरूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार अनुभव और आत्मविश्वास के बल पर ब्रह्म के निर्गुण रूप को हृदय में अवस्थित मानना ही ज्ञानमार्गी निर्गुणोपासना है। भक्तिकाल की ज्ञानमार्गी निर्गुणोपासना के प्रतिनिधि सन्त कवि-कबीर, नानक आदि हैं। इस युग में कबीर पंथ, नानक पंथ, दादूपंथ, बावरी पंथ, मलूकपंथ आदि बन गये थे। निर्गुणोपासना में ईश्वर, जीव, माया का विवेचन सहज जीवन के अनुभव से अर्जित ज्ञान के आधार पर हुआ है। निर्गुणोपासकों का ब्रह्म सर्वव्यापक होते हुए भी सगुण-निर्गुण से परे हैं। परमतत्व के सम्बन्ध में भीखा का मत है कि-

निर्गुण में गुन क्योंकर कहियत, व्यापकता समुदाय।
जहँ नाहीं तहँ सब कुछ दिखियत, अंधरन को कठिनाय।
अगमा नाम अकथ को कथनी, अलख लखन किन पाय।
भीखा अविगत की गति न्यारी, मन बुधि चित न समाय[1]।

नामस्मरण की महिमा का बखान तथा उसके द्वारा जरा मरण से मुक्ति का संकेत कबीरदास जी करते है-

चन्दा उ जैहै, सूरज उ जैहै, जैहै पवनौ पानी।
कह कबीर हम भगत न जैहैं, जिनको मति ठहरानी।।

* * *

मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं है रह्या, सीस नवावौं काहि[2]।

मन को चेतावनी गई है तथा आत्मसंयम पर विशेष बल दिया गया है-

काल कीट तन काठ कौं, जुए जनम कूं खाइ।
दादू दिन दिन जीव की, आव घटंती जाइ।।

* * *

काया कठिन कमान है खींचै बिरला कोई।
मारै पांचौं मिरगला, दादू सूरा सोई।।

माया के दो रूप- सत्य, मिथ्या संसार- को कबीर ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

कबीर माया मोहनी जैसी मीठी खाण्ड।
सतगुरु की कृपा भई नहीं तौ करती भाण्ड।।

1- भीखा वाणी, पृष्ठ 33.
2- कबीर ग्रंथावली-नागरी प्रचारिणी सभा, पृष्ठ-5.

सन्तों ने शास्त्रीय ज्ञान की उपेक्षा कर स्वानुभूति मूलक ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया है-

साखी आँखी ज्ञान की समुझि देखि मन माँहि ।
बिनु साखी संसार का झगरा छूटत नाहिं[1] ।।

*　　*　　*

सन्तो भाई आइ ज्ञान की आँधी रे ।
भ्रम की टाटी सबै उड़ाणी माया रहै न बाँधी ।

*　　*　　*

हिरदै जिनके हरि बसै ते जन कहियहि सूर ।
कही न जादू नाम्का, पूरि रह्या भरपूर ।।

ज्ञानमार्गी निर्गुणोपासकों के आध्यात्मिक विषय-ब्रह्म, जीव, जगत भक्तिकाल में हिन्दू और मुसलमान दोनों सन्तों ने बहुदेववाद का विरोध और एकेश्वरवाद में विश्वास, आस्था व्यक्त की । इनके अनुसार परमात्मा की सत्ता सर्वत्र है । पृथक से आत्मा का कोई महत्व नहीं । इन सन्तों के आध्यात्मिक सिद्धान्तों में सहज ज्ञान और आत्मा के प्रति समर्पण मान्य है ।

2- प्रेममार्गी उपासना-

निर्गुणोपासना की दूसरी धारा प्रेममार्गी है । सूफी सन्तों ने लोक जीवन में प्रचलित मानवीय प्रेम की शुद्ध पीड़ा को आधार बनाकर ब्रह्म साक्षात्कार का प्रयास किया है । प्रेममार्गी मुसलमान कवियों ने हिन्दी कथाओं को अपनाकर सूफीभाव अभिव्यक्ति किये । इन कवियों में कुतुबन, मंझन, जायसी हैं । इनकी रचनाएँ क्रमश: मृगावती, मधुमालती पद्मावत हैं जिसमें जीव, गुरु, पीड़ा, गोरखधन्धा तथा जीव-ब्रह्म मिलन का उल्लेख है । सूफी साधक लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम प्रस्तुत करते हैं तथा हृदय में ब्रह्म की स्थिति मानते हैं-

जौ लगि आप हेरान न कोई । तौ लहि हेरत पाव न सोई ।
पेमपहार कठिन विधि गढ़ा । सो पै चढ़ै सीस सौं चढ़ा ।
पंथ सूरिन्ह कर उठा अंकूरू । चोर चढ़ै कि चढ़ै सु मंसूरू ।
तू राजा का पहिरसि कंथा । तोरैं घरहिं माह दस पंथा ।
काम, क्रोध, तिस्ना, मद, माया । पाँचौ चोर न छाड़हि काया[2] ।

इस उपासना में विरह अनिवार्य तत्व है । इस विरह में जीवात्मा की परमात्मा के लिये तड़पन का मार्मिक चित्रण है । इसमें प्रेम पद प्राप्ति हेतु प्राणोत्सर्ग भाव निरन्तर विद्यमान रहता है ।

नन्द दुलारे बाजपेयी के अनुसार "सूफियों का परमतत्व सगुण-साकार है[3] । वास्तव में परमतत्व का निर्गुण रूप साधनात्मक दृष्टि से सगुण रूप लगता है । परन्तु यह सगुणता मूर्ति पूजा की न होकर मानसिकता की है । "सूफी

1- बीजक, 353/355.
2- पदमावत, 124/111, जायसी.
3- आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी-हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी, पृ. 198.

चाहे जिस किसी को प्रेम का पात्र कहें, परन्तु उनका प्रियतम परमात्मा ही है। उसी प्रियतम को वे अपने प्रेम का आलम्बन मानते हैं। उसी के प्रेम में वे समस्त संसार को निमग्न देखते हैं। प्रेम के पुल पर चलकर ही सूफी साधक भवसागर पार करते हैं। प्रेम ही उनका अमोघ अस्त्र या परमसाधन है"[1]

निर्गुण प्रेमोपासना में नर-नारी को आत्मा-परमात्मा का प्रतीक मान उच्चकोटि के रहस्यवाद की प्रतिष्ठा हुई है। पुरुष प्रतीक आत्मा नारी प्रतीक परमात्मा की प्राप्ति हेतु विकल रहती है। गुरु के मार्गदर्शन में मिलने का प्रयास करती है और साक्षात्कार कर अन्त में उसी परमतत्व परमात्मा में विलीन हो जाती है-

> तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनी चीन्हा।
> गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा।
> नागमती यह दुनिया धन्धा। बाँचा सोई न एहि चित्त बंधा।

इस प्रकार हम देखते है कि प्रेममार्गी निर्गुणोपासकों ने अपने प्रियतम को शिवात्म रूप में देखने का प्रयत्न किया है। और सीधे-सीधे सन्तोषपूर्ण मानव जीवन के आदर्शों को व्यापक उपलब्धि हेतु निवृतिमार्ग न अपनाकर प्रवृत्ति मार्ग को हृदयगम किया है। इन्होंने जीव को ईश्वर का अंश और जगत को ईश्वर का प्रदर्शन माना है"[2]। गुरु की महत्ता को "मुक्तिदाता" के रूप में स्वीकार किया है। प्रेममार्गी उपासना का प्रभाव परवर्ती रीतिकालीन सूफी कवियों पर व्यापक रूप में दृष्टिगोचर होता है।

सगुणोपासना-

भक्तिकाल की दूसरी धारा सगुणोपासना है। इसमें ब्रह्म के सगुण रूप की उपासना को महत्ता दी गई है तथा ज्ञान की दुरूहता के स्थान पर सगुणोपासना की बोधगम्यता का निरूपण किया गया है। इस युग के सगुणोपासक भक्त कवियों ने अवतारी विष्णु भगवान को अपना आराध्य बनाया तथा उनके दो अवतारों-राम और कृष्ण- की उपासना का सम्यक समाहार किया। आचार्य रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभाचार्य आदि ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन किया और अपना नवीन द्वैत दर्शन प्रस्थापित कर सगुणोपासना को प्रश्रय दिया। तुलसी, सूर सगुणोपासना के प्रमुख प्रकाश स्तम्भ हैं।

भक्तिकाल में सगुणोपासना के अन्तर्गत पंचोपासना, ईश्वर के लीला विग्रह की उपासना, ऋषि, देवता, पितृगण की उपासना तथा भूत-प्रेत, देवतादि की उपासना का प्रचलन था। इस युग में भक्ति के सिद्धान्त जीव, जगत की सत्यता और मायावाद का खण्डन आदि भी प्रतिपादित हुए।

1- पदमावत का काव्य सौन्दर्य-श्री शिवसहाय पाठक, पृष्ठ-221।

2- हिन्दी साहित्य का इतिहास-डा0 प्रतापनारायण टण्डन, पृ. 52।

भक्तिकाल में राम के शील,शक्ति,सौन्दर्य आदि रूपों की प्रतिष्ठा हुई है । इन तीनों रूपों का समन्वय ही ब्रह्म स्वरूप है । रामानुज,रामानन्द, आदि आचार्यों ने रामकथा को दर्शन और भक्ति की सहज,सुलभ,मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की । राम को कण-कण में व्याप्त माना गया तथा ज्ञान और भक्ति के समन्वय व्दारा तत्कालीन वैमनस्यता को समाप्त करने का प्रयास किया गया । राम को परब्रह्म परमेश्वर माना गया एवं सीता जी भी उन्हीं की शक्ति रूप मान्य हैं ।

निगम अगम,साहब सुगम,राम सचिली चाह ।
अंबु असन अवलोकियत सुलभ: सबहि जगमाँह ।।

x x x

जेहि इमि गावहिं वेद बुध,जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोई दसरथ सुत भगतहित कौसलपति भगवान ।।

x x x

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना (मानस)

x x x

अगुन सगुन दुई ब्रह्म स्वरूपा (मानस)

x x x

अगुन अरूप अलख अज जोई ।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।। (मानस बाल०)

x x x

अगुनहि सगुनहि नहीं कछु भेदा (मानस बाल०)

x x x

हरि मेरा पीव, मैं राम की बहुरिया ।

मार्यादा,माधुर्य,दास्य,सख्य के साथ भागवत की नवधा भक्ति का स्वरूप रामोपासना में भलिभाँति निरूपित हुआ है- नामस्मरण की महत्ता इस प्रकार प्रतिपादित है-

गदगद गिरा नयन बह नीरू ।
नाम जोह जप पुलक सरीरू ।।

x x x

स्वाँस स्वाँस में नाम जपु,खाली स्वाँस न जाय ।
ना जाने यहि स्वाँस का, आवन कब रूक जाय ।।

x x x

श्रवण- श्रवननि और कथा नहीं सुनिहौं रसना और न गैहौं ।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहि, सीस ईस ही नैहौं ।।

सत्संग,प्रेम,गुरु की महत्ता भी प्रतिपादित है-

बिनु सत्संग न हरिकथा तेहि बिनु मोहन भाग ।
मोह गयँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग ।।

x x x

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा । किएँ जोग तप ग्यान बिरागा ।।

x x x

बिनु गुरु होई न ग्यान [मानस उत्तरकाण्ड]

माया और ब्रह्म, सत्य और अनादि है । जीव अज्ञानावृत है-

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मो को तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान करो ।
करम उपासन ग्यान वेदमत सो सब भाँति खरो ।
मोहि तो सावन के अन्धहि ज्यों सूझत रंग हरो[1]।

तुलसीदास प्रभु मोह श्रृंखला छुटहि तुम्हारे छोरे[2]।
बिनु तव कृपा दयालु । दासहित मोह न छूटे माया ।

इस युग में दैन्य, विनम्रता, आत्मसमर्पण एवं आत्मभर्त्सना भाव की उपासना का निरूपण इस प्रकार हुआ है-

राम सों बड़ो है कौन मो सों कौन छोटो ।
राम सों खरो है कौन मो सों कौन खोटो ।।

इस युग में राम के साधुरक्षक एवं दैत्यदलन रूप की उपासना का विशिष्ट महत्व रहा । रामोपासना को गार्हस्थ और सामाजिक जीवन के सर्वसमर्थ रूपों के कारण इसे हिन्दू मात्र ने अपनाया । इस शाखा के एक मात्र कवि तुलसी हैं । अन्य कवियों में अग्रदास, नाभादास,हृदयराम आदि हैं ।

कृष्णोपासना-

राम का मर्यादा पुरुषोत्तम रूप पुराणों में विस्तार न पा सका परन्तु पुराणों में कृष्ण को लोक रक्षक और लोकरंजन लीलाओं में उनका आध्यात्मिक रूप व्यंजित हुआ है । उनके अलौकिक कृत्यों में असुरों के विनाश,धर्मसंस्थापन,माधुर्यपरक अपार लीलाओं का सर्वोपरि स्थान है । इसके अतिरिक्त कृष्ण को ब्रह्म,परब्रह्म,नारायण, ईश्वर,विष्णु आदि अनेक रूपों में उपासना हुई है ।

भक्तिकालीन कृष्णोपासना में सन्निविष्ट वल्लभ सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय,गौड़ीय आदि सम्प्रदायों ने राधा-कृष्ण की मनोहारी लीलाओं से कृष्ण उपासकों को भरपूर परितोष दिया है । इस युग में वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में कृष्णोपासना का आधार पुष्टि अथवा भगवत्कृपा

1- विनय पत्रिका-तुलसीदास,262,पृष्ठ.
2- विनय पत्रिका-तुलसीदास,144 पृष्ठ.

है । उनके अनुसार मनुष्य अपनी रागात्मिक वृत्ति के परिष्कार,प्रपत्ति और अनुग्रह मार्ग द्वारा दुख दैन्य से परित्राण पा सकता है । कृष्ण भक्तिशाखा के प्रमुख आधार स्तम्भ सूर ने भी ज्ञान,योग,कर्म एवं उपासना की उपेक्षा भगवद् अनुग्रह की प्राप्ति हेतु प्रेमा भक्ति को अपनाया-

जा पर दीनानाथ ढरैं ।
सोइ कुलीन बड़ो सुन्दर सोई जापर कृपा करैं ।
सूर पतित तरि जाय तनक मैं प्रभु ढरैं ।।

इस युग में सख्य,वात्सल्य,रूप कान्त तथा तन्मयासक्तियों के भावुक रूप को एवं उपासना पद्धति के दार्शनिक स्वरूप को सर्वाधिक पुष्टि हुई है । ईश्वर,माया, जीव,सृष्टि,काल के विशद विवेचन के साथ साथ जीवन की कोमल भावनाओं का भी यथा स्थान उल्लेख हुआ है-

ऊधौ विरहौ प्रेम करै ।
ज्यौं बिनु पुट पट गहत न रंग को रंग न रसै परै ।
ज्यौं धर दहै बीज अंकुर गिरि तौ सत फरनि फरै ।।

जब कृष्ण की वात्सल्य एवं माधुर्य भाव की उपासना की प्रधानता होती है तब कृष्ण का वैभव और शौर्य-शक्ति तिरोहित सा लगता है, लेकिन तन्मयता की चरमस्थिति उपासकों को बराबर रहती है ।

सम्प्रदायों से पृथक उपासना का स्वतन्त्र स्वरूप रसखान,मीरा और रहीम की प्रेम-लक्षणा भक्ति में सजीव हुआ है- एकाग्रभाव से माधुर्योपासना रस में निमग्न होकर मीरा ने लौकिक बन्धनों की मुक्ति हेतु निराकार कृष्ण को सगुण-साकार रूप प्रदान किया है-

जग सुहाग मिथ्या री सजनी हाँवा हो मिट जासी ।
वरन कर्यां हरि अविनाशी म्हारो काल काल्न खासी ।।

रसखान और रहीम का प्रेमतत्त्व निरूपण सूफियों का अनुकरण न होकर भक्त हृदय की उन्मुक्त साधना है । उन्होंने श्रीकृष्ण की अनन्त अलौकिक लीलागान के रसास्वादन का सूक्ष्म,व्यापक एवं विशद विवेचन प्रस्तुत किया है । इनके लिये प्रेम ज्ञान,कर्म और उपासना से भी सर्वोच्च है

ज्ञान कर्म रु उपासना सब अहमिति को मूल ।
दृढ़ निश्चय नहिं होत बिन किये प्रेम अनुकूल ।।
सेस,महेस,गनेस,दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं ।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावैं ।।

इस प्रकार भक्तिकाल की सगुण-निर्गुण उपासना के सम्यक निरूपण से ज्ञान,कर्म, योग उपासना तथा दर्शन के स्वस्थ समन्वय का विकास हुआ । कृष्णोपासना का स्वरूप परवर्ती काल में परिवर्तित होकर वर्तमान युग में समृद्ध रही है ।

भक्तिकाल में पौराणिक कृष्ण भक्तिभावना का प्रचार प्रसार व्यापक स्तर पर हुआ ।

रीतिकाल- रीतिकाल में राजाओं और सामन्तों की विलासिता से ऊबी हुई जनता की धार्मिकवृत्ति पूर्ववर्ती भक्तिभाव धारा के प्रवाह को गतिमान किये रही । जिसके परिणाम स्वरूप भक्तिकाल के पश्चात भी रीतिकाल में निर्गुण, सगुण उपासना के अन्तर्गत ज्ञान, प्रेम, भक्ति, नीति की धारा प्रवाहित होती रही । रीतिकालीन सन्तों की निर्गुणोपासना, सूफियों की प्रेमोपासना, सगुण भक्ति की राम-कृष्णोपासना में धर्म, भक्ति, उपासना के सभी रूपों को समाया गया है लेकिन उसमें लौकिक श्रृंगार की प्रवृत्तिही प्रधान रही है ।

सन्तों की निर्गुणोपासना-

कबीर, दादू, रैदास एवं नामदेव द्वारा प्रवाहित निर्गुण भक्ति-धारा में रीतिकाल के सन्तों ने अपनी ज्ञान योग साधना से योगदान दिया । इन सन्तों में यारी साहब, दरिया साहब, जगजीवनदास, पलटू साहब, चरणदास, शिवनारायण और तुलसीदास प्रमुख हैं । इन्होंने ज्ञान-योग अध्यात्म सम्बन्धी पदों में जीवात्मा को नारी रूप में एवं परमात्मा को प्रियतम रूप में अभिव्यक्त किया है-

> बिरहिनी मंदिर दियना बार ।
> बिन बाती बिन तेल जुगति सों, बिन दीपक उजियार ।
> प्रान पिया मेरे घर आयो, रचि पचि सेज संवार ।
> सुखमन सेज परमतत रहिया, पिय निरगुन निरंकार ।
> गावहु री मिलि आनन्द मंगल, यारी मिलि के यार ।

-यारी साहब-

नामस्मरण द्वारा निर्गुण ब्रह्म की उपासना का संकेत इस प्रकार मिलता है-

> भीतर मैलि चहल के लागो ऊपर तन का धोवै है ।
> अगति सुरति महल के भीतर, वा का पंथ न जोवै है ।
> जुगति बिना कोई भेद न पावे, साधु संगति का गावै है ।
> कह दरिया कुटने से गोदी, सीस पटकि का रोवै हैं ।

-दरिया साहब-

सतगुरू के माध्यम से परमात्मा से जीवात्मा का मिलन नर-नारी की भाँति वर्णित हुआ है-

> फूल एक फूलेला बलम जी के देसवा सतगुरू दिहले लखायहो
> नैन लखैहिया सोई फुल निरखत मन भौरा रहले लोभाय हो ।
> गगन कंवल का तीनों छुवाल भौरा गुंजिला तेहि बीच हो ।
> वाके डार पात नहीं साखा नहीं कांटो नहिं कीच हो ।

-शिवनारायण-

सन्तमत वैराग्य, शान्ति के अतिरिक्त माया का स्वरूप भी वर्णित हुआ है-

सब

नर है भिक्षी एक नारी, कोई बूझै साधु विचारी ।
हाथ न पाँव सीस नहीं काया, जाया सब जग न्यारी ।।
भाई न बाप आपसे उपजी, करी जगत को न्यारी ।
बारी न बूढ़ि लरम तन नाहीं, सोवत सब जग मारी ।।
आवै न जाय मरै न जीवै, जुग जुग रहनि करारी ।
ऋषि मुनि सब हारि किनारे, सब जग हारि पुकारी ।।

-तुलसी साहब-

इन सन्तों के अतिरिक्त गुरु तेगबहादुर, आनन्दघन, अक्षर अनन्य, प्राणनाथ, चरणदास, दयाबाई, सहजोबाई, शिवदयाल आदि रीतिकाल में हुए जिन्होंने बाह्याडम्बर और कुरीतियों का विरोध किया । ये सन्त सामान्य जन में भागवत् प्रेम और विरक्ति तो न जगा पाये पर बोधवृत्ति जाग्रत करने में सफल रहे ।

सूफियों की प्रेमोपासना-

सूफियों की प्रेमोपासना का प्रवाह ईसा की 17 वीं0 शती से लेकर 19 वीं0 शती तक निरन्तर गतिमान रहा । परन्तु उसमें भक्तिकालीन प्रेमोपासना की उत्कृष्ट प्रेमसाधना की व्यापक परिधि का स्पर्श नहीं हो सका है । रीतिकालीन सूफी प्रेमोपासना बाह्य रूप से ईश्वरोन्मुखी होते हुए भी श्रृंगारिकता से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सकी है । सूफी प्रेमोपासकों ने शारीरिक श्रृंगार को अलौकिक आभा, दिव्यसौन्दर्य, अध्यात्म श्रृंगार और सूफी अध्यात्म दर्शन से मण्डित किया है । इस तरह सांसारिक मुक्ति के बिना ही सूफियों की प्रेमोपासना ईश्वरीय आनन्द प्राप्ति का समुज्ज्वल छटा बिखेरती है ।

मुसलमान सूफी कवियों में कासिम शाह, नूरमुहम्मद और शेख निसार प्रमुख हैं । इन्होंने आध्यात्मिक-सिद्धान्त परक और कल्पित प्रेमकाव्य लिखे-

मन हग सौं कह राति मझारा । सूझि परा मोहि सब संसारा ।
देखेउँ एक नीक फुलवारी । देखेउँ तहाँ पुरुष और नारी ।
दोउ मुख सोभा बरनि न जाई । चन्द सुरुज उतरे भुईं आई ।
तपा एक देखेउँ तेहि ठाऊँ । पूछेउँ तासों तिन्हकर नाऊँ ।

-नूर मुहम्मद-

सूफी कवि नूरमुहम्मद ने शरीर, जीवात्मा तथा मनोवेगों का तत्वज्ञान आध्यात्मिक प्रतीकों द्वारा प्रतिपादित किया है ।

शेख निसार ने लौकिक प्रेम की नवीन उद्भावनाएँ इस प्रकार व्यक्त की है-

दिन भर मौन गहे रहे भूख प्यास गई भूल ।
पान खाई न रस पियें, काट गये सब फूल ।।

भूषन रतन उतारि जो धारा। दुखदायक भई सबै सिंगारा।
मन महँ सोच करै मुरझाई। जेगा प्रान सरूप देखाई।।
नाउँ ठाउँ कछु जानी नाहीं। कहाँ सो खोज करौं जग माहीं।

दुखहरनदास के "पुहुपावती" काव्य के प्रारम्भ में निर्गुण रामोपासना वर्णित है। सूफी सिद्धान्तों के अनुसार शरीअत, तरीकत, हकीकत की मंजिलें तय करने के पश्चात् अन्त में मारफत की प्राप्ति होती है। इस सूफी सिद्धान्त की सम्पुष्टि उक्त काव्य में हुई। सूफी प्रेमोपासना मोह नींद से जागरित कर ईश्वरीय प्रेम में रमने को प्रेरित करती है-

जागहिं प्रेम से

जागहिं कोकिल सुआ सुआरी। जागहिं रसिक पुरुष औ नारी।
जागे कारन मैं चित्त जानी। हिय उपजाई प्रेम कहानी।।

प्रेमोपासना में लौकिक प्रेम के सहज, सरल, बोधगम्य साधन रूप के माध्यम से अलौकिक अनुपमेय प्रेम का अवतारणा होती है। प्रेम के इस सात्विक क्षेत्र में यदि भक्त ईश्वर से प्रेम करता है तो ईश्वर में भी अपने भक्त के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है। सूफी प्रेमसाधना का मूल तत्व "काम" परम पवित्र, विषय भोग से परे और दिव्य है। यह इहलोक में ही मुक्ति प्रदाता है-

दुख हरन यहि काम रहै, राखि सकै जो कोई।
जगत माँहि सो सहज ही मुक्ति जीवत होई।।

सूफियों ने सृष्टि के मूल में प्रेम को ही कारण माना है-

"आदि प्रेम विधि ने उपराजा। प्रेमहि लागि जगत सब साजा[1]।।"
"रूप प्रेम विरहा जगत, मूल सृष्टि के खम्भ"[2]

-उसमान कवि-

जो मन रमा प्रेम रस भा दोउ जग को राय[3]।

-नूरमुहम्मद-

सूफियों ने ब्रह्म और जीव को आधार बना विशुद्ध लौकिक आध्यात्मिक रूप वियोग, शृंगार का वर्णन किया है। प्रेम की पीर और विरह की प्रतिष्ठा में सूफी कवियों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

रामोपासना-

राम का पावन चरित्र जन जीवन के लिये सर्वग्राही एवं प्रेरणास्रोत रहा है। भक्तिकालीन रामोपासना का स्वरूप बहुमुखी था। रीतिकाल में सत्रहवीं से उन्नीसवीं शती तक रामोपासना में माधुर्य-ऐश्वर्य के साथ शृंगार और नीति का प्राधान्य रहा। जिस पर कृष्ण की माधुर्योपासना का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। राम कृष्ण की चारित्रिक लीलाओं के प्रसंग में शृंगार के संयोग और वियोग

1- चित्रावली, पृष्ठ-13.
2- चित्रावली, पृष्ठ-14.
3- इन्द्रावती, पृष्ठ-6.

पक्षों की विवेचना हुई है । रीतिकालीन रामोपासना में "स्वसुखी" "तत्सुखी" सम्प्रदाय के प्रादुर्भाव से सीता की उपासना में सपत्नी या सखीभाव की रसिक प्रवृत्ति का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है ।

केशव रीतिकालीन रामभक्ति के अन्यतम पुरोधा हैं । केशव ने रामचन्द्रिका में ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है-

> सब जानि बूझियत मोहि राम । सुनिये सो कह्यो जग ब्रह्मनाम ।।
> तिनके अशेष प्रतिबिम्ब जाल । तेइ जीव जानि जग में कृपाल ।।

रामोपासना का स्वरूप चित्रण देखिये-

> अज अनादि अनन्त अपारा । अमल अगुन अमर अजीत अविकारा ।
> अज अनीह आतम अविनाशी । अगम अगोचर अविरल वासी ।
> अकथनीय अद्वैत अरामा । अमल अलेख अकर्म अकामा ।
> रहत अलिप्त ताहि उर ध्याऊँ । अनुपम अमल सुजस मैं गाऊँ ।

—नवलसिंह—

राम के रूप चित्रण में श्रृंगारिकता का पुट इस प्रकार चित्रित हुआ है-

> रथ पर राजत रघुवर राम ।
> क्रीट मुकुट सिर धनुषबान, कर सोभा कोटिन काम ।।
> श्याम गात के सरिया बानो, सिर पर मौर ललाम ।
> बैजन्ती बनमाल लसै उर, फटिक मध्य अभिराम ।।
> मुख मयंक सरसीरुह लोचन हैं सबके सुखधाम ।

—जानकी रसिक शरण—

रामोपासना में राम को चरण वन्दना इस प्रकार दृष्टिगोचर होती है-

> कल्पलता के सिद्धिदायक कलप तरु,
> कामधेनु कामना के पूरन करन है ।
> तीन लोक चाहत कृपा कटाक्ष कमला को,
> कमला सदाई जाकी सेवत चरन हैं"।

भक्तिकालीन रामोपासना रागानुगा एवं माधुर्यभाव से अनुप्राणित थी । जिससे प्रभावित हो रीतिकालीन रामोपासना में लौकिक श्रृंगारिकता का समावेश हुआ है । इस युग में राम की माधुर्योपासना का सहज स्वाभाविक चित्रण नहीं है, [illegible] पाण्डित्य प्रदर्शन का ही प्राधान्य है ।

कृष्णोपासना-

भक्तिकालीन कृष्णोपासना की परम्परा रीतिकाल में आगे बढ़ी । भक्ति काल में कृष्ण गोपी का प्रेम मिलन आत्मा-परमात्मा रूप में स्वीकृत किया गया पर

1- "प्रेमसखी-हंसराज बख्शी-

रीतिकाल में कृष्णोपासना की वह मौलिक शुद्धता रसिकता प्रदर्शन का प्रतीक मात्र रह गई । इस युग में आध्यात्मिक अनुराग निरूपण पार्थिव श्रृंगार में अनुवर्तित हुआ । भक्तिकालीन माधुर्योपासना राधाकृष्ण की आड़ में श्रृंगारिकता में परिवर्तित होकर प्रवाहित होने लगी ।

कृष्ण का सौन्दर्य वर्णन का उदाहरण देखिये-

भृकुटी बंक भंजन से, कंजन गंजनवारे ।
मद भंजन मृग मीन सदा जे, मन रंजन अनियारे ।।

-नीपिका-

इस युग में कृष्ण के प्रति माधुर्योपासना का निदर्शन हुआ है । कृष्णोपासना के अन्तर्गत आश्रितों और सुश्रियाना भाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है । सखीभाव की अभिव्यक्ति में प्रेमतत्व का निरूपण देखिये-

जुग जुग नैन कमल अलि मेरे ।
पलक न पलक पलक बिनु देखे, अरबरात अतिफिरत न फेरे ।।
पान करत मकरन्द रूप रस, भूलि नहीं फिर इत उत हेरे ।
भागवत रसिक भये मतवारे, झूमत रहत छके मद तेरे ।।

-भगवत रसिक-

सखी भाव के उपासक अपने को राधा की सखी तथा कृष्ण को आराध्यपति मानकर उपासना करते हैं-

लोचन ललित प्रीतिरस पागे पुतरिन स्याम निहारे ।
मानौं कमल दलन पर बैठे उड़त न अलि मतवारे ।।

प्रेमसखी -बख्शी हंसराज-

इस युग में केशव ने गीता के आधार पर जरा मृत्यु का वर्णन इस प्रकार किया है-

जीव मरै न मरे नहि छीजै ।
ता कहँ सोक कहा अब कीजै ।।
जीवहि विप्र न भिन्न जानौ ।
केवल ब्रह्म हिये महँ आनौ ।।

भक्तिकालीन एकान्तिक प्रेमनिष्ठा, आत्मसमर्पण, सख्य माधुर्यभाव कालान्तर में लौकिक श्रृंगार भावना जागृत करने में सहायक सिद्ध हुआ है । मधुराभक्ति के ज्ञान और प्रेम के निरूपण द्वारा रीतिकालीन श्रृंगारिक वातावरण में भी रामकृष्ण की सख्य, वात्सल्य, दास्य आदि उपासना पद्धतियों का विधान मिलता है । अन्त में यह उल्लेखनीय है कि रीतिकालीन कृष्णोपासना में मधुराभक्ति का पूर्ण विस्तार हुआ है ।

आधुनिक काल-

आधुनिक काल में समाज सुधार, संस्कृति या धर्मनीति प्रतिपादन में ही उपासना का स्वरूप परिलक्षित होता है। इस युग में नवधा भक्ति का आलम्बन भगवान न होकर दीन, दलित जनवर्ग तथा उनकी लीलायें अलौकिक न होकर नवीन दृष्टिकोण और तर्क से युक्त हैं। भक्तिकालीन भक्तिभावना का इस युग में अभाव है। आधुनिक भौतिकतावादी युग में समयानुकूल सत्यं, शिवं, सुन्दरं की नवीन उपासना पद्धति प्रवाहित हुई है। आधुनिक काल में प्रचलित उपासना के स्वरूप का निर्धारण करने हेतु हम प्रतिपाद्य विषय को निम्न वर्गों में बाँट सकते हैं-

1- वैष्णवोपासना--

भक्तिकालीन वैष्णव मतावलम्बियों में रामानुज और रामानन्द ने लक्ष्मी-नारायण एवं रामलीला के ऐश्वर्य एवं दास्यभाव की उपासना की। वल्लभाचार्य जी ने कृष्ण के बालरूप की, चैतन्य ने शक्तिमान कृष्ण की और हितहरिवंश ने लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के माधुर्य भाव की उपासना की। उपर्युक्त वैष्णवोपासना का प्रभाव आधुनिक काल की रामकृष्णोपासना पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस युग में चित्त-अचित्त विशिष्ट ईश्वर का प्रतिपादन जीव, जगत और ईश्वर के रूप में किया गया है। वैष्णवोपासना में जीव और ईश्वर की भाँति जगत को नित्य मानकर उपासना को ईश्वर प्राप्ति का साधन स्वीकारा गया है-

जीव और ईश्वर - जीव और प्रभु मध्य अड़ी माया कहीं[1]।

जगत - मैं तो निज भव सिन्धु कभी का तर चुका[2]।

आधुनिक कालीन वैष्णवोपासना में राम-कृष्णादि के अवतार एवं नवीन परिष्कृत व्यापक स्वरूप की विवेचना हुई है लेकिन इस युग में कई वैष्णवाचार्यों ने शैव और शाक्तोपासना के विभिन्न सिद्धान्तों, क्रियाओं एवं उपासना पद्धतियों का भी अपने ढंग से रूपान्तरण कर लिया है। राम-कृष्ण एवं शैव, शाक्तोपासना का पृथक-पृथक अध्ययन किया जा रहा है-

कृष्णोपासना-

आधुनिक काल में भागवत की नवधाभक्ति कृष्णोपासना के नवीन लोकहित रूप में प्रतिपादित हुई है। प्रेमरस मग्ना गोपियों की मार्मिक दशा का चित्रण द्रष्टव्य है-

सखी बंसी बजी नन्दनन्दन की।
श्री वृन्दावन की कुंजगलिन में सुधि आई साँवर घन की।
मगन भई गोपी हरि के रस बिसरि गई सुधि तन मन की[3]।

x x x

अनन्योपासना का उदाहरण देखिये-

वे तो हैं हमारे ही हमारे ही औ
हम हैं उन्हीं की उन्हीं की उन्हीं की है[4]।

1- "साकेत"-मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ 142
2- वही
3- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पद, 8, सं० 1932
4- उद्धव शतक-श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर-पद-60

गोपियाँ श्री कृष्ण को प्राप्ति को सच्ची साधना मानती है-

ब्रह्म मिलिबे ते कहा मिलि है बतावौ हमैं,
ताको फल जब लौं मिलै ना नन्दलाला हूं[1]।

कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम और समर्पण भाव देखिये-

भलो हैं बुरो है औ सलज्ज निरलज्ज हूं है,
जो कहौ सो है पै परिवारिका तुम्हारो है[2]।।

रासलीला में प्रेमाभक्ति एवं एकभाव दृष्टव्य है-

रास के रस का कर मधुपान सभा सबने सत्वरनिज ज्ञान।
न सुधि तन को, मन को थी शेष बोध भव न रहा लवलेश।
त्यागकर अपना स्थूल शरीर, सिन्धु में यथा सरित का नीर[3]।

प्रेमपरा भक्ति का उदाहरण इस प्रकार है-
प्रीति की रीति स्याम ही जानै
अपने के संग डोलत निस दिन, नेक न अन्तर आनै।
अपने पै अपनो चढ़ाय रंग,प्रेम छटा रस सानै[4]।

दास्य भक्ति का उदाहरण देखिये-

जगन्नाथ तुम्हारा सदा सदा मैं दास रहूं।
जहाँ जहाँ भी जनमूं जग में पद पंकज के पास रहूं[5]।

असत्य संसार से मन को प्रभुचरणों में समर्पित करने की चेतावनी निम्न प्रकार है-

मोरो मुख घर ओर तैं, तोरो भव के जाल।
छोरी जगजाल सबै,भजो एक नन्दलाल[6]।

इस युग की कृष्णोपासना में गीता के दार्शनिक भावों को नवीनरूप में उद्भावना हुई है। कृष्ण ही ब्रह्म हैं। जो निराकार रूप में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं और साकार रूप में रामकृष्ण के रूप में अवतार लेते है-

निराकार,साकार,अज,सगुण,निर्गुण अवतारी।
जग में व्यापक आधार यही,जग में लेता अवतार वही।
है निराकार साकार यही, जयराम हरे घनश्याम हरे[7]।

1- उद्धव शतक-श्री जगन्नाथदास रत्नाकर-पद,60
2- वही पद,96.
3- राधाकृष्ण-श्री राजेश्वर प्रसाद नारायण,पृष्ठ-133.
4- अनुराग मंजरी-श्री वियोगी हरि,पृष्ठ-14.
5- कृष्णायन-पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र,पद 220.
6- उत्तरार्द्ध भक्तमाल-श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र.
7- मोहन मोहिनी-गोस्वामी बिन्दु जी,पद-115.

कृष्ण के प्रभुत्व के विषय में ब्रह्मा को भी सन्देह हुआ है-

ब्रह्मा ने बहुतेरा सोचा, पर नहीं समझ में आता था ।
फिर फिर यह ही शंका होती, यह कैसा जग को त्राता है ।
मटुकिया तोड़ता फिरता है, दधि माखन नित्य चुराता है-1।

× × ×

जय निर्गुण निर्मल निराकार । जय विविध रूप जय निराकार ।
साकार सगुण जय जय विराट । आकाश तुम्हारा है ललाट-2।

× × ×

करो जगत पावन सकल, सोचि लखो मन यह ।
यदपि निर्गुण तदपि, अहत सगुण हरि देह-3।।

कृष्ण के "विश्वरूप" का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि, ब्रह्माण्ड उनका विराट शरीर है जिसमें जगत स्थित है । कोई वस्तु उनसे भिन्न नहीं, प्राणी उन्हीं की मूर्तियाँ हैं-

विश्वात्मा जो परम प्रभु है रूप तो हैं उसी के,
सारे प्राणी सरि गिरि लता बेलियाँ वृक्षनाना ।
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा,
भावोपेता परम प्रभु की भक्ति सर्वोत्तमा है-4।

× × ×

विपुल सृष्टि नित नव विविध के, विकार आधार,
मकरी के सम जगत जाल यदि, सृजत और विस्तारत ।
कौतुक ही में हरत ताहि पुनि, वेद-पुराण उचारत,
जग में तुम और तुम में सब जग, वासुदेव अभिराम-5।

"श्रीकृष्ण मनुष्य की पूर्णता के प्रतीक हैं । उनकी अलौकिक घटनाओं के पीछे मनुष्य की वे कल्पनाएँ, वे इच्छाएँ छिपी हुई हैं जिन्हें वह अपने में देखना चाहता है । मनुष्य की पूर्ण सामर्थ्य,पूर्ण कामना और सम्पूर्ण पूर्णता को श्रीकृष्ण के चरित्र में विकसित हुई है । आवश्यकता इस बात की है कि हम शब्दों को न देखकर अर्थ को देखें । अर्थ को न देखकर भावना को पहचानें । भावना में न जाकर तथ्य की ओर ध्यान दें ।

रामोपासना-

आधुनिक काल में पूर्ववर्ती युगानुसार श्रीराम के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों की उपासना हुई है । श्रीमद्भागवत की नवधा भक्ति का इस युग को

1- कृष्णायन[कर्म से वाले कन्हैया],पं० राधेश्याम कथावाचक,पृष्ठ-21.
2- कृष्ण चरित-पं० रूप नारायण पाण्डेय,पृष्ठ-77 [2014]
3- राधा माधव विलास-पं० सत्यनारायण कविरत्न, दोहा-8.
4- प्रिय प्रवास-श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" 16/117.
5- विनय राधामाधव विलास [विनय] पं० सत्यनारायण कविरत्न,पृ-3.
6- व्यास अभिनन्दन ग्रंथ,पृष्ठ-384,1966.

रामोपासना पर पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । स्वरूप और गुणों का वर्णन करने से उपासक के मानस में भगवान के प्रति पवित्र भाव और प्रेम उद्भूत हो जाता है-

तू ही तू है विश्व में, राम रूप गुण धाम,
है तेरी ही सुरभि से सुरभित यह आराम ।
आँखें उठती हैं जिस ओर तू ही तू देखा जाता है"[1]।

रामनामस्मरण से जन्म-मरण, रूप, क्षुधा, पिपासा की शान्ति ही होती हो है मुर्दे भी शिवलकारी हो जाता है-

बन्दौं रामनाम अविनाशी । अचल अखण्ड चराचर वासी ।
सब सुखकरण हरण दुखभारी । जपैं जाहि शिव शैलकुमारी ।।

रामनाम स्मरण के प्रभाव से जीव का ईश्वर से साक्षात्कार हो जाता है और उसके जप, तप, योग, साधना, ज्ञान, तीर्थ, व्रत आदि सार्थक हो जाते है-

रामरसना रटन्त जो जन करत मन महँ ध्यान ।
भक्त वत्सल बसत हिय नित, बहुत अनुभव ज्ञान ।।
योग साधन करत जनमन, तबहुँ सिद्धि न पाव ।
त्रिकाल दरशी जनत मुहहु नाम रूप प्रभाव"[2]।।

x x x

रोम-रोम में राम-राम ध्वनि,
जिहा पीछे है आगे है

-साकेत सन्त-

सेवा परायणता का उदाहरण दृष्टव्य है-

दूर हम होंगे नहीं श्रीराम से,
यदि लगे हैं हम उन्हीं के काम से"[3]।

इस युग में सगुणोपासना का ज्ञान, कर्म से समन्वित प्रेमरस सिक्त माना गया है-

सगुण मूर्ति उपासना दृढ़ नींव है शुचि भक्ति की,
चित्तवृत्ति निरोध की जननी सहज अनुरक्ति की"[4]।

उपासना के मुख्य लक्ष्य की प्राप्ति निम्न क्रियाओं द्वारा बताई गई है-

प्रभु गुणों का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चिन्तन, वाद
वार है ये अंग, जिनमें ईश सेवा भाव"[5]।

1- सरस्वती, अगस्त 1914-मैथिलीशरण गुप्त ।
2- भरतअवलोक भक्ति-पं० शिवरत्न शुक्ल, 18/30, सं० 1989.
3- साकेत-मैथिलीशरण गुप्त: 7/44.
4- भगवान राम-श्री मनमोहनलाल श्रीवास्तव, पृष्ठ-103.
5- रामराज्य-डॉ० बल्देव प्रसाद मिश्र: 7/81.

माया में फंस यह दुष्ट जीव, तब तक पाता आराम नहीं ।
जब तक निष्काम, शुद्ध मन से मुख से गाता श्रीराम नहीं"[1]।।

श्रीरामोपासना के तात्त्विक विवेचन में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि वे निराकार ब्रह्म के अवतार हैं तथा उपासना से सगुण साकार हो जाते हैं । श्रीराम सृष्टि के जनक, पोषक, संहर्ता तथा ज्ञान और मोक्ष के प्रदाता हैं-

राम अमानी अति अभिमानी, निर्गुण-सगुण एक संगी"[2]।

x x x

राम उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता, सर्वेश्वर,
राम विदेही, राम सदेही, राम सीयपति, परमेश्वर"[3]।

x x x

होकर अनेक वह एक ही है, और फिर वह एक अनेक ही है ।
जल और ओले की तरह, प्रिया निर्गुण और सगुण एक ही है"[4]।।

श्रीराम विश्वनियन्ता हैं तथा प्रत्येक प्राणी उन्हीं की ज्योति से प्रकाशित है-

स्वामी एक राम हैं उन्हीं का धाम विश्व यह,
जन में जनार्दन की ज्योति नित्य जागी है ।
तीव्र अनुभूति इस भाँति जिसकी है हुई,
नश्वर जगत में वही तो बड़भागी है"[5]।।

अद्वैत की अभिव्यक्ति देखिये-

राम-भक्ति-भोग-कर्म ज्ञान एक ही हैं
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं ।
एक ही है दूसरा नहीं है कुछ
द्वैत भाव ही है भ्रम
तो भी प्रिये,
भ्रम के भीतर से
भ्रम के पार जाना है"[6]।

उपर्युक्त तथ्यों से प्रकाशित होता है कि आधुनिक काल में श्रीराम के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों की उपासना का प्रचलन है ।

शैवोपासना-

आधुनिक काल में शिव के सगुण रूप की अपेक्षा निर्गुण निराकार रूप रूप की उपासना की प्रमुखता रही है । शैवोपासना में नवधाभक्ति के वन्दन,

---

1- राधेश्याम रामायण-पं0 राधेश्याम कथावाचक (सुन्दरकाण्ड, पृष्ठ-14.
2- उर्मिला-पं0 बाल कृष्ण शर्मा "नवीन" 3/25।.
3- वही, 6/2. (4) राधेश्याम, रामायण-पं0 राधेश्याम कथावाचक बा0पृ0-5.
5- साकेत सन्त-उपक्रम-2, डॉ0 बल्देव प्रसाद मिश्र, सं0 2003.
6- परिमल, पंचवटी प्रसंग-सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृष्ठ-23.

नामस्मरण, आत्मनिवेदन, शरणागत तथा दास्यादि रूपों के उल्लेख के साथ-साथ उपासना के तात्त्विक स्वरूप की विवेचना हुई है जिसमें शैवोपासना के सगुण, निर्गुण स्वरूप का दिग्दर्शन इस प्रकार हुआ है-

आत्मा के आलोक पर से ज्योतित उर मंदिर हो ।
करुणा के मृदु आर्द्र दृगों से, सिंचित स्वच्छ अजिर हो ।
खुले पटों पर हृदय के, मुक्त तत्व दर्शन को ।
हो स्वरूप साकार देवता, पुण्य प्राण वदन को"[1] ।।

चरणानुराग की कामना में उपासक का आत्मनिवेदन इस प्रकार व्यक्त है-

श्री शिव पद पद्मों में, रत रज सा हो मन मेरा ।
हो पराग से पूत सुमन सा पूजा हित तन मेरा"[2] ।

उपासना, उपासक और उपास्य में कोई भेद नहीं होता । उपासना का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप उपासक का उपास्य के प्रति निष्काम समर्पण भाव है-

यही शास्त्र सिद्धान्त है, यही कह रहे वेद ।
भक्ति भक्त भगवान में, तनिक नहीं है भेद"[3] ।

शिव के दर्शन संसार के अणु-अणु में होते हैं । जीव शिव की पूर्ण प्राप्ति में ही साधनों की परम अन्विति मानता है-

शिव में ही अन्वित परिणति सब साधन की ।
शिव में कृतार्थता मानव के जीवन की ।
शिव में ही सुन्दर की पावन पूजा ।
शिव से बढ़कर जीवन में सत्य न दूजा"[4] ।

शिव सृष्टि के कर्त्ता, भर्त्ता, संहर्ता तीनों हैं । उनमें जल, थल, सूर्य, चन्द्र और ब्रह्माण्ड समाहित हैं-उनके स्वरूप का तात्त्विक विवेचन इस प्रकार है-

कर्त्ता, भर्त्ता, संहर्ता
यह तीनों ही एक परस्पर है"[5] ।

x x x

हे सृष्टिपते, हे प्रजापते, सुर जिनको छू न पाते हैं
मुनियों के मन तलक में भी, जो प्रमुवर सहज न आते हैं"[6] ।।

1- पार्वती, मंगलाचरण-रामानन्द तिवारी शास्त्री, पृष्ठ-1.
2- वही
3- शिवचरित्र-सं0 राधेश्याम कथावाचक, लेप0 बनारसीदास मिश्री, पृ.7.
4- पार्वती-रामानन्द तिवारी शास्त्री, भारतनिन्दन, वर्ष-27, सं0-2012.
5- शिवचरित्र-सती स्वयम्बर प्रसंग, सं0 राधेश्याम कथावाचक लेप0 मदन मोहन लाल कथावाचक, पृष्ठ-15.
6- वही, पृष्ठ-19.

देवों में हैं वे महादेव,सारी वसुधा गाता है ।
मुददाता मंगलदाता हैं, सुखदाता हैं, वरदाता हैं ।
शिव में तो जल,थल,सूर्यचन्द्र सारा ब्रह्माण्ड समाया है ।
वेदों ने भी उनकी महिमा, माया का पार न पाया है"[1]।।

* * *

भूमि तुम ही जलरूप तुम ही तेजवायु,
तुम ही हो औ आकाश रूप हो तुम्हीं ।
इन्द्र तुम ही हो विधि विष्णु तुम ही हो ।
चन्द्र सूर्य तुम ही हो त्यों प्रकाश रूप हो तुम्हीं ।
आत्मा तुम्हीं हो परमात्मा तुम्हीं हो सर्व,
रूप तुम्हीं हो शिव एक रूप हो तुम्हीं"[2]।।

शाक्तोपासना का प्राचीनतम रूप सिन्धु-सभ्यता की मातृदेवी पूजा में तथा वैदिक कालीन"[3] आदि शक्ति की प्रतिष्ठा में मिलता है । सिन्धु युग से लेकर पौराणिक युग तक शक्ति और उसके समकक्ष विभिन्न देवियों की उपासना का प्रचलन था । आदिकाल से आधुनिक काल तक शास्त्रीय,दार्शनिक रूप देने की प्रक्रिया में विशेष समादर प्राप्त हुआ । शक्ति की स्वतन्त्र रूप से पूजा,स्वरूप और उपासना में विविधताऐं दृष्टिगोचर होती हैं । दुर्गा सप्तशती और देवी भागवत शाक्तोपासना के मुख्य आधार ग्रंथ हैं ।

शक्ति से समन्वित शिव के सृष्टि रचना,पालन,संहार सम्बन्धी कार्यकलापों में शक्ति नियोजिका रूप में प्रतिष्ठित है-

शिव से संयुक्त शक्ति जागरित मानवता की जय हो ।
ज्ञान शक्ति से, शक्ति श्रेय और सुन्दर से अनुरागी"[4]।।

शक्ति सभी कार्यों के मूल में है । शक्ति का नारी स्वरूप सृष्टि की प्रक्रिया में प्रत्यक्षतः विशेष महत्वपूर्ण है । पार्वती को आदि शक्ति कहा गया है "आदि शक्ति है विश्व मंगला विपुल शैलकुमारी"[5] । शक्ति की आज्ञा से ही सृष्टि साकार रूप धारण कर सचेतन बनती है-

जिनकी प्रीति उदार चेतना बन जीवन में छाई ।
जिनकी कृपा अपार प्रकृति में, कृति गौरव बन आई"[6]।।

1- शिवचरित्र-सती स्वयम्बर प्रसंग,सं0 राधेश्याम कथावाचक लें0 पं0 मदनमोहन लाल कथावाचक,पृष्ठ-27.
2- शिवाशिव-शतक-नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह,छन्द सं0-76,सं0 1949.
3- ऋग्वेद-1/89/10:10/8/30.
4- पार्वती-पं0 रामानन्द तिवारी शास्त्री-भारतीनन्दन,पृष्ठ-1,2012.
5-6 वही, पृष्ठ-9.

आधुनिक काल में शक्ति की तन्त्रोपासना का कुत्सित रूप प्रायः निम्न जातियों में प्रचलित है। पूजन में बलिदान, चमत्कार, तांत्रिकों की शक्ति उपासना में मांस, मदिरा, मैथुन, मुद्रा आदि की ओर सामान्य जनवर्ग अधिक आकृष्ट हुआ है। परन्तु शाक्तोपासना का विशुद्ध, दुर्लभ भक्तिभावना से अनुप्राणित स्वरूप प्रबुद्ध जागरूक उपासकों के प्रयत्न से आज तक सुरक्षित है। आधुनिक काल के जीवन में शील और सौन्दर्य की रक्षा हेतु शाक्तोपासना की आवश्यकता है, क्योंकि उन्हीं की इच्छा शक्ति की अनुभूति विश्व में होती है। इस युग में शक्ति के रूप में देवी की उपासना और सकाम अनुष्ठानों की परम्परा प्रचलित है।

निर्गुणोपासना-

निर्गुणोपासना के सम्बन्ध में श्रीमद्-भागवत[1] में उल्लेख है कि निराकार ब्रह्म के गुणों का श्रवण, गान तथा उनके प्रति अनन्य व निष्काम प्रेम ही निर्गुणोपासना है। आधुनिक काल में भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन सन्तों से प्रभावित निर्गुणोपासना का विवेचन हुआ है। ब्रह्म की अनन्तता के अंश रूप में सृष्टि के समस्त उपादान समाविष्ट हैं जिसका उल्लेख निम्न पद में इस प्रकार हुआ है-

> अरे एक क्या शत सूर्यों में तेरा जैसा तेज नहीं।
> तू अनन्त, तू अगम अगोचर, तू अनन्त नामी, दामी"[2]।।

परमेश्वर सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त, अजन्मा तथा आदि, अन्त-हीन है-

> वह तेज युक्त वह दीप्तिमान।
> वह देहरहित, वह स्नायुरहित, वह प्रणविहीन शोभानिधान
> वह पाप रहित वह शुद्ध सतत, वह विश्व व्याप्त वह आप्तकाम"[3]

यद्यपि प्रभु को समग्ररूप से नहीं जाना जा सकता फिर भी वह शुद्ध बुद्ध स्वरूप और विश्वनियन्ता है-

> हो आप जड़ता से परे, नित शुद्ध बुद्ध स्वरूप हो।
> जो प्राण का भी प्राण, सारे विश्व का आधार है।
> आनन्द अम्बुधि, अखिल अधिपति, अर्यमा अविकार है।
> पावन प्रजापति, प्रेमनिधि, पीयुष, पारावार है।
> अज आदि अन्त विहीन शाश्वत शान्ति सुषमागार है"[4]।।

परमेश्वर को वेद शास्त्र भी नहीं जान पाये हैं-

> वह आगम-निगम-अगम्य, गम्य रागाधिगम।
> वह योग युक्त, पर अयुक्त, संतक्तिराम"[5]।।

1- श्रीमद्-भागवत-3/29/11:3/29/12:3/29/14.
2- भक्ति तरंगिणी--डॉ0 मुंशीराम शर्मा, पद-13.
3- वही, पृष्ठ-30.
4- सद्धि संगीत-डॉ0 मुंशीराम शर्मा"सोम", पद सं0-2
5- विरहिणी-डॉ0 मुंशीराम शर्मा: 1/8.

वह परम शान्ति, गतिशील निकटतम, दूरतम ।
वह सर्वान्ति: परियायो प्रेमी निर्मम"।[1]

परमात्मा के सान्निध्य में जीव अहंकार विगलित हो जाता है । वह उससे एक्य प्राप्ति में दिव्यानन्द की अनुभूति करने लगता है । यही निर्गुणोपासना की चरमस्थिति है । निर्गुणोपासना हठयोग एवं ब्रह्म चिन्तन को मुख्य साधना के रूप में नहीं बल्कि परम्परा के प्रभाव में उपदेशात्मक रूप में संसार की निस्सारता, माया मोह तथा विषयों की निन्दा की अभिव्यक्ति मात्र है-

"साझ सबेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है ।
हम सब एक दिन उड़ जायेंगे यह दिन चार बसेरा है"[2]।।

x x x

"साधो मनुवां अजब दिवाना ।
माया मोह जनम के ठगिया, तिनके रूप भुलाना"[3]।।

x x x

"जो विषया संतन तजी, ताहि मूढ़ लपटात ।
जो नर डारत वमन करि, स्वान स्वाद सों खात"[4]।।

इस युग की देशभक्ति को व्यापक प्रेरणा आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल में मुखरित राष्ट्रीय स्वरों से प्राप्त हुई थी । आधुनिक काल में ईश्वरोपासना और देशानुराग का समन्वय उल्लेखनीय है । भारतेन्दु युग में धार्मिक विरोध की व्यर्थता, धार्मिक सहिष्णुता और उदारता का समन्वय हुआ है । द्विवेदी युग में यह समन्वय धर्म निरपेक्षता में परिणित हुआ । इस युग में जातीयता, राष्ट्रीयता और भक्तिभावना के समन्वय के साथ-साथ तत्कालीन विसंगतियों का चित्रण इस प्रकार हुआ है-

जागो अब लौं जन बल दलन
रक्षहु अपनो आर्य मर्द[5]।

x x x

डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो"[6]

-प्रबोधिनी कविता-

कहां करुनानिधि केशव सोये"[7]।

निम्न देशानुराग व्यंजक पंक्तियां दृष्टव्य हैं-

हम भारत भारतवासिन पै अब दीनदयाल दया करिये"[8]।

1- विरहिणी-डॉ० मुंशीराम शर्मा, पृष्ठ-1/6.
2- श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र.
3- श्री प्रताप नारायण मिश्र.
4- श्री राधाकृष्ण दास.
5- श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र.
6- प्रबोधिनी कविता-श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र.
7- श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।
8- श्री प्रतापनारायण मिश्र ।

तत्कालीन सामाजिक दशा का चित्रण इस प्रकार चित्रित है-

> चिअवा चिलपै नित धेनु कटै
> कोउ लागत हाय गोहार नहीं"[1]।।
>
> x x x
>
> अने या प्यारे भारत के पुनि दुख दारिद हरिये"[2]।।

निम्न पंक्तियों में राष्ट्रीय भावना, आत्म निष्ठा तथा नवचेतना के जागरण और आह्वान का सन्देश है-

> देश प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है,
> अमल असीम त्याग से विलसित ।
> आत्मा के विकास से जिसमें,
> मनुष्यता होती है विकसित"[3]।।
>
> x x x
>
> करते अभिषेक पयोद हैं बलिहारी इस वेष को,
> हे मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश को"[4]।।

उपर्युक्त पंक्तियों में देशहित के लिये ईश्वर से कामना की गई है । कालानुसार देशानुराग और ईश्वरोपासना का स्वाभाविक समन्वय आधुनिक काल में हुआ है ।

1- श्री प्रतापनारायण मिश्र ।
2- विनय शीर्षक कविता, श्री राधाकृष्णदास।
3- श्री रामनरेश त्रिपाठी ।
4- श्री मैथिलीशरण गुप्त ।

तृतीय अध्याय

3.0. लोकगीतों में उपासना का स्वरूप

3.1. लोकगीतों की उत्पत्ति

3.2. भाषा, परिभाषा

3.3. स्वरूप

3.4 वर्गीकरण

3.2.1 लोकगीतों में भाव

3.2.2. लोकगीतों में भक्ति

3.2.3 लोकगीतों में ज्ञान

3.2.4 लोकगीतों में वैराग्य

लोकगीतों में उपासना का स्वरूप-

लोकगीतों में उपासना के स्वरूप को समझने के पूर्व लोकगीतों के स्वरूप का अध्ययन आवश्यक है ।

लोकगीतों की उत्पत्ति-

"लोक साहित्य को लोक का, लोक के लिये लोक की सम्पत्ति कहा गया है"[1] । अतः लोकसाहित्य अतीत की गूंज के साथ वर्तमान की सशक्त आवाज भी है"[2] । यह एक ऐसी खान है जिसमें बहुरंगी संस्कृति की परतें अत्यन्त दयनीय दशा में दफन हैं"[3] । लोकसाहित्य के प्रमुख रूपों-लोककथा, लोकगीत, लोकनाट्य, लोकोक्तियों आदि में "लोक गीत" विशिष्ट और अभिन्न अंग हैं । लोकसाहित्य की विधाओं में लोकगीत की सर्वाधिक समृद्धि के कारण-व्यावहारिक जीवन में उनकी व्यापकता, गेयता और स्त्रियों द्वारा संरक्षण ही प्रमुख हैं । लोक अंग्रेजी के "फोक" का पर्याय तथा समूचे जनसाधारण के लिये प्रयुक्त शब्द है । "गीत" वह कृति है जो "गेय" हो । लोकगीत-लोकजीवन की सहज गेय अभिव्यक्ति हैं ।

लोकगीत किस युग के किन क्षणों में कैसे सृजित हुए ? इनका निर्माता कौन है ? आदि विवादास्पद प्रश्न जिज्ञासुओं को निरन्तर अन्वेषण की ओर प्रेरित करते हैं । लोकगीतों को किसी युग विशेष की संकुचित सीमा में बांधना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है । "वास्तव में लोकगीत उतना ही पुराना है जितना आदि मानव"[5] । जब मानव आनन्दातिरेक से हृदयोद्वेलन की स्थिति में पहुंचता है तो गीत स्वतः निःसृत होने लगते हैं । मानव शिक्षित हो या अशिक्षित उनकी हर्ष-विषाद की भावावेशमयी तीव्रतम अवस्था का स्वरूप जब वाणी द्वारा मुखरित होने लगता है तभी गीतों की सहज उत्पत्ति होती है । गीत सृजन की यह सहजवृत्ति ही लोकगीतों का निर्माण करती है । लोकगीतों का जनसामान्य की अनुभूति से त्वरित तादात्म्य हो जाने से रचना लोकप्रिय होती जाती है । तथा नाम लिपि-बद्ध न होने से निर्माता अज्ञात होता जाता है । इस तरह लोकगीत "व्यक्ति विशेष" की रचना न होकर समूह की रचना हो जाती है ।

लोकगीतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के विचार युक्ति संगत प्रतीत होते हैं-

"कहां से आते हैं इतने गीत ? स्मरण विस्मरण की आंख -मिचौनी से, कुछ अट्टहास से और कुछ उदास हृदय से । जीवन के खेत में ये गीत उगते हैं--- कल्पना भी अपना काम करती है: रागवृत्ति भी, भावना भी और नृत्य का हिलोरा भी"[6]।

---

1. "Folk -liter-ture is essentially of the people, by the people and for the people". T.H. Gaster; stand-rd diction-ry of Folk, mythology & Legend; Vol.1; P.399.
2. "Folklore is an echo of the past, but at the s-me time it is -lso the vigorous voice of the present. Russian Folklore; P.15.
3. " Folklore is - mine in which layers of m-ny hued cultures -re lying burried in - terribly compressed condition".-An out line of Indi-n Folklore; P.5.
4. Encyclop-edi- Brit-nic-; p.448.
5. धरती गाती है- श्री देवेन्द्र सत्यार्थी- पृष्ठ-178.

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी विवेचन करते हैं कि- "जैसे कोई नदी किसी घोर अन्धकारमयी गुफा से बहकर आती हो और किसी को उसके उद्गम का पता न हो ठीक यही दशा गीतों की है"[1] पाश्चात्य मतानुसार-लोकगीत मानव हृदय का वह उद्वेलित एवं स्वत: स्फूर्ति संगीत है"[2], विलियम ग्रिम ने सामूहिक उत्पत्ति के सिद्धान्त द्वारा लोकगीतों की उत्पत्ति होना सिद्ध किया है"[3]।

लोकगीतों की उत्पत्ति विषयक विभिन्न मतों के विवेचन से सिद्ध होता है कि लोकगीतों की उत्पत्ति न तो सामूहिक रूप से होती है और न ही जाति विशेष द्वारा । इनका रचयिता एक व्यक्ति होता है । लोकगायकों द्वारा प्रक्षेपण के कारण सामूहिक रूप हो जाता है, मूल रूप लुप्त हो जाता है"[4]।

लोकगीत लोकमानस की नैसर्गिक अभिव्यक्ति है । ये मौखिक परम्परा में प्रवाहमान होते हैं और कभी-कभी गायक भी अपना नाम प्रक्षेपित कर देता है, तब लोक गीत मूल रूप में सुरक्षित न रहकर संशोधित हो जाते हैं । इस मौखिक प्रक्रिया में ही गीत लोकप्रिय हो जाता है और गीतकार अज्ञात । इस तरह हमें ज्ञात नहीं हो पाता कि कब, किसने रचना कर दी? फिर भी लोकगीत अनन्त व्यापी हैं, अमर हैं । उनमें अपनापन है । वे पराये नहीं लगते, क्यों कि उनमें हमारी अन्तरात्मा की गहनतम अनुभूतियाँ अभिव्यंजित रहती हैं ।

भाषा-

प्राय: लोकगीतों की भाषा अपने जनपद की ग्रामीण बोली होती है जिसमें अन्य भाषाओं के शब्द तथा प्रचलित उर्दू शब्दों का मिश्रण कम हो पाता है । लोकगीतों पर गज़लों का प्रभाव भी पड़ा है । लोकगीतों की भाषा लोक और संस्कृति का ज्वलन्त प्रतीक होती है । लोकगीतों की भाषा नित्य जीवन में प्रचलित और बोलचाल में प्रयुक्त होने के कारण अपने क्षेत्र की भौगोलिक ऐतिहासिक, सामाजिक तथा साहित्यिक गतिविधियों को प्रभावशाली अभिव्यक्ति करने में समर्थ होती है । "लोकगीतों में प्रयुक्त भाषा केवल कथन का रूप मात्र नहीं है । उनमें प्रयुक्त प्रत्येक शब्द व्यक्ति की तरह जीता है और वह जीवन से ही अर्थ ग्रहण करता है । लोकगीतों में न शब्द महत्वपूर्ण है, न शब्द का प्रयोग महत्वपूर्ण बात यह है कि शब्दावली का प्रयोग किस सन्दर्भ में हुआ है"[5]।

---

1. कविता कौमुदी, श्री रामनरेश त्रिपाठी, भाग-5, ग्राम गीत प्रकरण, पृष्ठ-8।
2. "The primitive spontaneous out flow of life of the people who live in a more or less primitive condition". A study of orissan folklore, Patna, 1950, P.1.
3. Chamber's encyclopaedia, Vol. V, Page-765.
4. " The germ of folk melody is produced by an individual and altered in transmission into a group fashioned expression " Columbia Encyclopaedia, III edition , Page-737.
5. गढ़वाली लोकगीत- एक सांस्कृतिक अध्ययन-डॉ0 गोविन्द चातक, पृष्ठ-332, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, सन् 1968.

लोकगीतों की भाषा में शब्दों के उत्कर्ष-अपकर्ष आदि परिवर्तनों में जनता का अज्ञान, असावधानी, प्रान्त परिवर्तन, प्रचार, मुलअर्थ, लोप, ध्वन्यात्मक प्रयोग, लाक्षणिक शक्ति आदि कारण हैं। सुर-प्रधानता से लोकगीतों की भाषा में मधुरता, संगीतात्मकता का समावेश हो जाता है। लोकगीतों की भाषा में स्थान भेद, कालभेद के कारण संज्ञा, सर्वनाम, कारक, क्रिया में अन्तर आ जाता है पर मूल सांस्कृतिक भाव एक ही रहता है। "लोकगीत की शत सहस्त्र मौलिकता अनेक जनपदों में युगयुगान्तर से गौरवान्वित होती रही है। इसकी कोई एक भाषा नहीं, कोई एक परम्परा नहीं। प्रत्येक भाषा में, प्रत्येक परम्परा में सुख दुख की धड़कन, आशा-निराशा की प्रतिक्रियाएँ और सामाजिक समस्याओं के बहुमुखी आन्दोलन आप ही आप प्रतिबिम्बित हो उठते हैं।"[1] लोकगीत भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। उनमें हम कितने प्राचीन खोये हुए शब्दों को जनपदीय वातावरण में जीवित देख सकते हैं[2]।

परिभाषा-

लोकगीत की उत्पत्ति विषयक मान्यताओं के आधार पर निर्धारित पाश्चात्य एवं भारतीय अध्येताओं की लोकगीत की परिभाषाएँ विचारणीय हैं।

x ग्रिम के मतानुसार-"लोकगीत तो अपने आप बनते हैं"[3]।

x पैरी के अनुसार-आदिकालीन मानव का स्वतः स्फूर्त उल्लासमय संगीत लोकगीत है"[4]।

x लोकगीत अशिक्षित जन में अज्ञात रूप से निर्मित गेय गीत हैं, जिनका प्रचलन शताब्दियों तक रहा"[5]।

x अज्ञात निर्माता द्वारा रचित मौखिक प्रक्रिया द्वारा प्रवहमान संगीत लोकगीत हैं"[6]।

x लोकगीत ऐसे जनसमूह की संगीतात्मक काव्य रचनाएँ हैं जिसके साहित्य का निर्माण लेखनी और छपाई से नहीं अपितु मौखिक परम्परा से हुआ"[7]।

---

1. धीरे बहो गंगा-देवेन्द्र सत्यार्थी, पृष्ठ-163.
2. बुन्देलखण्डी लोक गीत-श्री शिव सहाय चतुर्वेदी, भूमिका लेखक-श्री वासुदेव शरण अग्रवाल
3. " A folksong composes itself-Grimm-Encyclopaedia Britanica, Vol-9, Page-448."
4. "primitive spontaneous music has been called folksong " A bid; Page-447.
5. The folklore is a song i.e. lyric poem with melody, which originated anonymously among unletterd folk considerable time, as a rule for centuries".-The Science of Folklore; A.H.Krappy, Page-135.
6. " Folk song; music of anonymous composition, transmitted orally". -Encyclopaedia columbia; Page-737.
7. "Folksongs comprise the poetry and music of the groups whose literature is perpetuated not by writing and print but through oral tradition".-Standard Dictionary of Folklore, Mythology & legend; Vol.II, Page-1032.

* लोकगीत न पुराना होता है, न नया । वह एक जंगली वृक्ष की तरह है जिसकी जड़ें गहराई से दूर तक दबी पड़ी हैं लेकिन जिसमें नित्य नवीन शाखाएँ, पल्लव, फूल लगते रहते हैं"[1]।

* "लोक गीत पूर्ण रूप से अछूती खानें हैं । उनमें से एक भी पंक्ति ऐसी नहीं, जो यदि प्रकाशित हो जाये तो, भाषा विज्ञान की किसी न किसी समस्या के समाधान हेतु मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत न करे"[2]।

*5 लोकगीत के बीज जातीय संगीत में मिलते हैं"[3]।

* "लोकगीत विद्यादेवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं । वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास-प्रश्वास हैं । सहजानन्द में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सच्चिदानन्द में विलीन होने वाली आनन्दमयी गुम्फाएँ हैं"[4]। डॉ0 सदाशिवकृष्ण फड़के ।

* गीत मानो कभी न छीजने वाले रस के सोते हैं"[5]। -वासुदेवशरण अग्रवाल-

* ग्राम गीत प्रकृति के उद्गार हैं । इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है । छन्द नहीं, केवल लय है । लालित्य नहीं केवल माधुर्य है ।।। ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है । प्रकृति के वे ही गान ग्राम गीत हैं"[6]।

---

1. " A Folksong is neither new nor old it is like a forest tree with its roots deeply burried in the past, but which continually puts forth new branches, new leaves, new fruits" Relph V. Williams; Encyclopaedia Britania, Vol. IX page-448.

2. "Folksongs are a mine, almost entirely unworked & there is hardly a line is one of them, which if published now, will not give valuable ore, in the shape of an explanation of some philopgical difficulty S.G. Griesson- Journal of Royal Asiatic Society; Book-III, part-I; Calcutta-1883, Page-32.

3. "It seeds lies in "community singing" -meet my people-sri Devendra Satyarthi; Page-194.

4- सम्मेलन पत्रिका-लोक संस्कृति अंक-पृष्ठ-250-251 सम्वत्-2010.

5- धीरे बहो गंगा-देवेन्द्र सत्यार्थी, भूमिका, पृष्ठ-7.

6- कविता कौमुदी, भाग-5, रामनरेश त्रिपाठी, ग्राम गीतों का परिचय परिचय प्रकरण, प्रस्तावना, पृष्ठ-1 एवं 2.

* ग्रामगीत आर्येतर सभ्यता के वेद हैं"[1]। [डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी]

* आदिम मनुष्य हृदय के गानों का नाम लोकगीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की, उसके रुदन की, उसके समस्त सुख-दुख की कहानी-इनमें चित्रित है"[2]।

* "लोक जीवन में लोकगीतों की एक चिरन्तन धारा आदिकाल से चली आ रही है। मेरे अपने विचार से ये लोकगीत मानव हृदय की प्रकृत भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है जो स्वर और ताल की प्रधानता न देकर लय या धुन प्रधान होते हैं"[3]। [शान्ति अवस्थी]

* गीत लोक-गीत भी होते हैं और साहित्यिक भी। लोकगीतों के निर्माता प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते हैं, और कुछ में वह व्यक्त भी करते हैं। वे लोक भावना में अपने भाव मिला देते हैं। लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है किन्तु उनमें साधारणीकरण एवं सामान्यता कुछ अधिक रहती है"[4]। [बाबू गुलाबराय]

* वे गीत जो लोकमानस की अभिव्यक्ति हों अथवा जिनमें लोकमानसाभास भी हो, लोकगीत के अन्तर्गत आयेगा"[5]। [सत्येन्द्र]

* "ग्रामगीत सम्भवतः वह जातीय आशुकवित्व है, जो कर्म या क्रीड़ा के ताल पर रचा गया है। गीत का उपयोग जीवन के महत्त्वपूर्ण समाधान के अतिरिक्त मनोरंजन भी है।"[6] [आर्य]

उपरोक्त लोकगीतों की परिभाषाओं के मत वैभिन्य से जो निष्कर्ष निकले हैं। उसकी परिणति इस प्रकार है-

1- लोकगीतों का रचनाकाल एवं रचयिता अज्ञात होता है।
2- लोकगीतों में भावाभिव्यक्ति रागात्मक होती है।
3- लोकगीत मौखिक प्रक्रिया द्वारा प्रवाहमान होते हैं अतः परिवर्तित एवं संशोधित होते रहते हैं।
4- लोकगीतों में सामान्यीकरण की अद्भुत शक्ति होती है।
5- लोकगीत अकृत्रिम होते हैं, इनमें विभिन्न प्रकृतभावनाएँ अभिव्यंजित होती हैं।
6- लोकगीतों से सामूहिक गान द्वारा मनोरंजन होता है।

1- छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय:भूमिका,डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ-5.
2- राजस्थान के लोकगीत-पूर्वकरण पारीक:नरोत्तमस्वामी:प्रकाशन-1956.
3- हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पत्रिका,लोक संस्कृति अंक,पृष्ठ-37,सं० 2010.
4- "काव्य के रूप" -बाबू गुलाबराय,पृष्ठ-123.
5- लोक साहित्य विज्ञान: पृष्ठ-390, शिवलाल एण्ड कम्पनी आगरा,1962.
6- जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त-[आर्य]-पृष्ठ-175.

7- लोकगीतों में प्राचीन संस्कृति चित्रांकित रहती है ।
8- लोकगीतों की प्रथम पंक्ति की पुनरावृत्ति प्राय: प्रत्येक कड़ी के बाद होती है।
9- लोकगीत प्राय: अतुकान्त होते हैं ।
10- लोकगीतों में संगीतात्मकता होती है ।
11- लोकगीतों में मूल रूप का अभाव या परिवर्तन हो जाता है ।

उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर लोकगीतों की एक सुनिश्चित परिभाषा निर्धारित की जा सकती है। मेरे दृष्टिकोण से लोकगीत की परिभाषा इस प्रकार हो सकती है-

लोकगीत अज्ञात रचियता द्वारा मानव हृदय का प्रसूत भावनाओं की लयात्मक व सहज अभिव्यक्ति है । लोकगीतों में ऐसी लोकसंस्कृति समाविष्ट है जो लिखित साहित्य में दुर्लभ है ।

लोकगीतों का स्वरूप-

"जब से पृथ्वी पर मनुष्य हैं तब से गीत भी हैं । जब तक मनुष्य रहेंगे तब तक गीत भी रहेंगे । मनुष्यों की तरह गीतों का भी जीवन-मरण साथ लगा रहता है । कितने ही गीत तो सदा के लिये मुक्त हो गये । कितने ही गीतों ने देशकाल के अनुसार भाषा का चोला तो बदल डाला,पर अपने असली रूप को कायम रखा । बहुत से गीतों की आयु हजारों वर्षों की होगी । वे थोड़े फेर-फार के साथ समाज में अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं"[1]।

लोकगीतों में जीवन के सम्पूर्ण पक्षों की अभिव्यंजना सरलता और स्वच्छन्दता पूर्वक होती है । अनपढ़,संवेदनशील सामान्य जनता के पास अपने हृदय के स्वाभाविक उद्‌गारों को अभिव्यक्त करने हेतु शब्द नहीं होते । अत: लय के माध्यम से वह इस कमी को पूर्ण करती है । अभिव्यक्ति के पूर्व शब्दों से अधिक लय और संगीत तत्त्व ही प्रमुख होता है । शब्द वाणी के सम्प्रेषक हैं । वाणी के माध्यम से व्यक्ति अपने अनुभवों एवं आशा-आकांक्षाओं को गाकर व्यक्त करता है । लोकगीतों की यह भावना सामूहिक रूप से लोकरंजक वातावरण में अभिव्यक्त होती है । जिसमें लोक संस्कृति के विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं । लोक संस्कृति की इस स्वच्छन्द दुनिया में ही लोकगीतों का स्वरूप सहजरूप से निर्मित होता है । " हम लोकगीतों को साहित्य का मूलधन मानकर मानव-जीवन की अनेक रहस्यमयी एवं जिज्ञासापूर्ण वस्तुओं का ज्ञान के आलोक में तथ्यान्वेषण कर सकते हैं"[2]।

1- "कविता कौमुदी" परिवर्धित संस्करण,तीसरा भाग[ग्रामगीत]पृष्ठ-78.

2- "साहित्याचे मूलधन [मराठी] काका कालेलकर द्वारा लिखित एवं डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय की मालवी लोकगीत एक विवेचनात्मक अध्ययन पुस्तक के पृष्ठ-19 पर उद्धृत ।

जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं, ऐसा दृष्टिकोण नहीं, ऐसा स्पन्दन नहीं जो लोकगीतों की सीमा का संस्पर्श न करता हो । लोकगीत परम्पराओं के उस महानद के समान हैं जिसे अनेक छोटी-मोटी धाराओं ने मिलकर महासमुद्र बना दिया है । सदियों के घात-प्रतिघातों ने इसमें आश्रय पाया है । मन की विभिन्न स्थितियों ने इसमें अपने ताने बाने बुने हैं । स्त्री-पुरुष ने थककर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है । इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानी में प्रेम की मस्ती आई है, बूढ़ों ने मन बहलाए हैं, वैरागियों ने उपदेश का पान कराया है, विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकाकी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावटें दूर की हैं, किसानों ने अपने बड़े बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाए हैं"[1]।

लोकगीतों में व्यष्टि समष्टि का भेद प्रायः समाप्त हो जाता है । उसकी प्रमुख विशेषता भी यही है कि व्यक्ति विशेष की कृति मौखिक परम्परा के प्रवाह में समाज की निजी कृति समझी जाने लगे । मौखिक परम्परा में प्रवाहमान लोकगीत परिवर्तित एवं संशोधित रूप में ही निरन्तर प्रचलित होते रहते हैं । पर उसके मूलभाव में कोई परिवर्तन नहीं हो पाता । इस तरह लोकगीत प्राचीनता-नवीनता के समन्वय द्वारा सांस्कृतिक एकता को कायम किये रहते हैं । "लोकगीत काल प्रवाह में अपने बाह्य आवरण (भाषा) को बदलता रहता है"[2]।

लोकगीतों में हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है जैसे प्रेम में आकर्षण, श्रद्धा में विश्वास और करुणा में कोमलता । प्रकृति के गान में मनुष्य इस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है जैसे कविता में कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग । प्रकृति संगीत मय है । ग्रहगण एक नियति कक्ष में फिर कर उसी संगीत का कोई स्वर सिद्ध कर रहे हैं । झरनों का अविराम नाद, पत्तों की मरमर ध्वनि, चंचल जल का कल-कल, मेघ का गर्जन, पानी का छमाछम बरसना, आँधी का हाहाकार, कलियों का चटकना, विद्युत, समुद्र का महारव, मनुष्य की भिन्न-भिन्न भाषाएँ और विचित्र उच्चारण, खग, पशु, कीट, पतंग, आदि की बोलियाँ यह सब उसी संगीत के मंद्र तार स्वर और लय हैं । वज्रपात व्याप है और नदियों का प्रवाह मूर्छना । ग्राम गीत प्रकृति के उसी महासंगीत के अंग हैं"[3]।

1- भारतीय लोकसाहित्य, श्री श्याम परमार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ-53, सन् 1954.

2- राजस्थानी लोकगीत-सूर्यकरण पारीक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृष्ठ-2, सम्वत्-1999 वि.

3- कविता कौमुदी, ग्रामगीत, रामनरेश त्रिपाठी, नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, बम्बई, 1955, पृष्ठ-69.

धार्मिक भावना, लौकिक अनुष्ठानों की भावना, रीति-नीति, लोकमान्यताएं तथा जीवन की विशिष्ट घटनाएं-जन्म, विवाह, मृत्यु-लोकगीत की छाया में प्रतिबिम्बित होती हैं। "लोकगीत की एक-एक बहु के चितवन पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएं, खण्डिताएँ और धीराएं न्योछावर की जा सकती हैं, क्यों कि ये निरलंकार होने पर प्राणमयी हैं, और वे अलंकारों से लदी होकर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिये किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं हैं और अपने आप में परिपूर्ण हैं"[1]। लोकगीतों में काव्य साहित्य की अपेक्षा रस का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता है। लोकगीतों का जन्म स्थान गांव है। जिनकी वाणी में मस्तिष्क नहीं, हृदय है, जिनकी मैत्री के मूल में स्वार्थ का कीट नहीं, प्रेम का परिमल है, जिनके मानस जगत में आनन्द है, सुख है, शान्ति है, प्रेम है, करुणा है, सन्तोष है, त्याग है, क्षमा है, विश्वास है, उन्हीं ग्रामीण मनुष्यों के बीच में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के ये ही गान लोकगीत हैं"[2]

भारतीय लोकगीतों के स्वरूप के अध्ययन से स्पष्ट होता है, कि सांस्कृतिक एकता भाषाभेद के होते हुए भी एक ही जैसी है। प्रादेशिक परम्परा एवं शब्दों में विभिन्नता हो सकती है पर मानव हृदय में व्याप्त सामूहिक भाव-सुख-दुख, हर्ष-विमर्ष, आशा-निराशा, भय-आशंका आदि-ऐक्य की ओर संकेत करते हैं। "लोकोक्ति हो अथवा पौराणिक उपाख्यान, पहेली हो अथवा लोकगीत, अध्ययन करने पर इनके समरूप वेदों, पुराणों, बौद्ध अथवा जैन साहित्य तथा महाकाव्यों में अवश्य मिलते हैं"[3]।

लोकगीतों का वर्गीकरण-

लोकगीतों की विपुल संख्या, वर्ण्य विषय की व्यापकता के कारण इनका क्षेत्र विस्तृत है। यह व्यापकता मानव समाज से सम्बन्धित है। कोई विषय ऐसा नहीं जो लोकगीतों के लिये वर्जित हो। कोई ऐसा स्थान नहीं जो कभी न कभी लोकगीतों से गूंजा न हो। कोई ऐसा कण्ठ नहीं जिससे कोई गीत न मुखरित हुआ हो। जीवन की संख्यातीत क्रियाओं के अनुरूप ही लोकगीतों में मानव मनोविज्ञान का तादात्म्य दिखाई देता है। व्यापक निस्सीम गीतों को वर्गीकृत कर संकुचित सीमा में बांधना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। कुछ विद्वानों ने लोकगीतों का वर्गीकरण कर उन्हें किसी न किसी वर्ग के अन्तर्गत रखने का प्रयास किया है। पं० रामनरेश त्रिपाठी"[4] ने ग्रामगीतों का वर्गीकरण इस तरह किया है-

---

1- "हिन्दी साहित्य की भूमिका-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ०-130.

2- बुन्देलखण्ड के लोकगीत-उमाशंकर शुक्ल, वि०सं०-2010, पृष्ठ-27.

3- "whether you study a proverb, a myth, a riddle, or a song you must certainly find its prototype either in vedic, Buddhist-Jain literature or with Epics & the purans."-An out line of Indian Folklore; Introduction) Page-1.

4- कविता कौमुदी भाग-4, पं० रामनरेश त्रिपाठी, पृष्ठ-45.

1- संस्कार सम्बन्धी गीत

2- बच्चों बरते के गीत

3- धर्मगीत

4- ऋतु सम्बन्धी गीत

5- खेती 0

6- भिखमंगो

7- मेले के गीत

8- जाति गीत

9- वीर गाथा

10- गीत कथा

11- अनुभव के वचन

12- पर उपर्युक्त वर्गीकरण वैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता।

प0 सूर्यकरण पारीक का वर्गीकरण निम्नवत है:[1]-

1- देवी-देवताओं और पितरों के गीत

2- ऋतुओं के गीत

3- तीर्थों के गीत

4- व्रत-उपवास और त्योहारों के गीत

5- संस्कारों के गीत

6- विवाह के गीत

7- भाई-बहिन के प्रेम के गीत

8- साली-सालियाँ रा गीत

9- पति- पत्नी के प्रेम के गीत

10- पणिहारियों के गीत

11- प्रेम के गीत

12- बच्चों पोसते समय के गीत

13- बालिकाओं के गीत

1- राजस्थानी लोकगीत-प0 सूर्यकरण पारीक,पृष्ठ-22-25।

14- वरसे के गीत

15- प्रभाती गीत

16- बरसात-राधाकृष्ण के प्रेमगीत

17- धमालें-होली के अवसर पर पुरुषों द्वारा गये गीत

18- देश प्रेम के गीत

19- राजकीय गीत

20- राजदरबार, मजलिस, शिकार, दारूगीत

21- बन्ने के गीत [रामदेवजी आदि]

22- सिद्ध पुरुषों के गीत

23- क- वीरों के गीत

ख- ऐतिहासिक गीत

24- क- ख्यालों के गीत

ख- हास्यरस के गीत

25- पशु पक्षी सम्बन्धी गीत

26- शान्त रस के गीत

27- गांवों के गीत

28- नाट्य गीत

29- विविध

इनके वर्गीकरण में क्रम का अभाव है । कई श्रेणियों के गीतों को एक वर्ग में अन्तर्भुक्त किया जा सकता है ।

डा० श्याम परमार ने लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

1- जातियों की दृष्टि से

2- संस्कारों और प्रथाओं की दृष्टि से

3- धार्मिक विश्वासों की दृष्टि से

4- कार्य के सम्बन्ध की दृष्टि से

5- रस सृष्टि की दृष्टि से ।

जार्ज सेम्पसन[1] ने गीतों को आठ भागों में विभक्त किया है-

1- Cambridge History of English literature; Page-106

1- ऋतु उत्सव के गीत

2- परम्परा त्योहार के गीत

3- खेल के गीत

4- पालने के गीत

5- आध्यात्मिक गीत

6- धार्मिक गीत

7- भगवान के गीत

8- प्रणय भावना के गीत

डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित[1] ने लोकगीतों को निम्न वर्गों में विभाजित किया है-

1- संस्कारों की दृष्टि से वर्गीकरण

2- ऋतु सम्बन्धी गीत

3- व्रत सम्बन्धी गीत

4- जाति सम्बन्धी गीत

5- विविध गीत

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर वैज्ञानिक, व्यवस्थित और सरल वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है-

1- उपासना गीत

2- धार्मिक, नैतिक गीत

3- संस्कार गीत

4- व्रत, पर्व, त्योहार गीत

5- ऋतु गीत

6- श्रम गीत

7- खेल गीत

8- कथात्मक गीत

9- सामयिक गीत

10- विविध गीत

1- सम्मेलन पत्रिका-लोक संस्कृति अंक-पृ०सं०-146.

इस प्रकार हम देखते है कि लोकगीतों के वर्गीकरण के कई आधार है। किसी एक आधार पर उनका वर्गीकरण करना असंगत होगा क्यों कि उनमें एक साथ कई भावनाओं, भाषाओं, क्रियाओं तथा तत्वों का समन्वित होना आवश्यक है। उपासना धार्मिक, नैतिक, संस्कार, व्रत, पर्व, त्योहार, ऋतु, जाति एवं रसानुभूति के सर्व-मान्य आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण युक्ति संगत है। केवल संस्कार सम्बन्धी गीतों के आधार पर विभाजन नहीं किया जा सकता क्यों कि कई भावनायें एक साथ इस प्रकार वर्णित है जिन्हें एक वर्ग के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। रसात्मक दृष्टिकोण से लोकगीतों को किसी एक रस के आधार पर वर्गीकृत नहीं किया जा सकता क्यों कि एक ही गीत कई रसों के अधिकारी होते हैं। यही हाल जाति गीत, ऋतुगीत एवं श्रम सम्बन्धी गीतों का है। स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों के गीतों को प्रवृत्तियों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। लेकिन नारी, मानव की भावनायें व्रत, त्योहार संस्कार के गीतों में इस तरह दूध में पानी की तरह घुलमिल गई है कि उनको विभाजित करके परखना कठिन है।

समग्र रूप से विवेचन करने पर वस्तुतः यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न संस्कारों एवं अवसरों पर प्रचलित लोकगीतों का विषयानुसार वर्गीकरण पर्याप्त नहीं है। "देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिये दुर्भाग्य की बात होगी"[1]।

वर्गीकरण के सम्बन्ध में श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का निम्न कथन उपयुक्त जान पड़ता है- "यह कहा जा सकता है कि लोकगीतों का बचपन धर्म की छाया में व्यतीत होता है। अनेक गीत ऐसे मिलेंगे जिनका जन्म, पूजा, पर्व, त्योहार या व्रत के साथ होता है। कुल देवता के पूजा गीतों में शत-शत पीढ़ियों की आत्मा प्रतिबिम्बित हो उठती है। जन्म, विवाह तथा मृत्यु सम्बन्धी विश्वास, शकुन, अपशकुन, भूत-प्रेतों की पूजा के मंत्र और गीत, जादू टोने तथा पशु पक्षियों और वृक्षों सम्बन्धी विश्वास -इन सबके अध्ययन से हम देश की विचारधारा से परिचित हो सकते है"[2]।

1- लाला लाजपतराय के पत्र से उद्धृत-कविता कौमुदी भाग-5, श्री रामनरेश त्रिपाठी, पृष्ठ-77.
2- "धीरे बहो गंगा"- श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, पृष्ठ-136.

लोकगीतों के स्वरूप विश्लेषण के पश्चात् लोक गीतों में निहित भाव, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के आधार पर उसके भावात्मक स्वरूप का विवेचन भी आवश्यक है ।

परिभाषा-

भरत के अनुसार "मानसिक अवस्थाओं का व्यंजक प्रदर्शन ही भाव है"[1]।

धनंजय ने "आश्रय की सुख-दुख आदिम भावस्थितियों के ज्ञापन को भाव माना है"[2]।

लोकगीतों में भावों का शास्त्रीय एवं लौकिक पक्ष-

भारतीय साहित्याचार्यों ने मानव हृदय की अनन्त भावानुभूतियों के आधार पर स्थायीभावों की सत्ता स्वीकार कर श्रृंगार के स्थायीभाव रति को आदि-भाव माना है। ०० रति ही काव्य तथा लोकजीवन का मुख्य भाव है, मूलाधार है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में, विभिन्न मनोदशाओं में अभिव्यक्त होकर मानव अस्तित्व को कायम रखने की प्रेरणा देता है । काव्य शास्त्रीयों ने नवरस के विभिन्न अंगों से विविध मनोदशाओं का यथार्थ चित्रण किया है उसके आधार पर लोकमानस की भावनाओं को परखना सम्भव नहीं ।

लोकगीतों में प्रेम भक्ति, अनुराग, करुण, श्रृंगार, वीर और वात्सल्य आदि भावों का सहज उन्मेष अनायास हो जाता है । रौद्र, वीभत्स, भयानक रसों का इनमें अभाव है । अद्भुत रस बालक, बालिकाओं के गीतों में परिलक्षित होता है । भक्तिभावना पूर्ण गीतों में शान्त रस मूर्तिमान हुआ है ।

रस और भावों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । रस निष्पत्ति हेतु जिन विभाव, अनुभाव, संचारी भावों के संयोग की आवश्यकता होती है लोकगीतों में उनका अभाव है । लोकगीतों से ०००० स्वयं रस सूचक होते हैं । अतः उनकी उत्पत्ति, लोकगीतों में स्वतः होती है । अन्तश्चेतना और अनुभूतियों के संश्लिष्ट रूप विधान की अनुप्रेरणा एवं भावनाओं की रसपूर्ण योजना का अपूर्व, संगम लोकगीतों की विभूति है । लोकगीतों में सप्रयास अलंकार योजना न होने पर भी अनुप्रास उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का स्वाभाविक उ सृजन हो गया है । समस्त प्रान्तों के लोकगीतों में भावात्मक उद्रेक के साथ रस-योजना तथा सांस्कृतिक चेतना समा विष्ठ रहती है । निर्वैयक्तिक "लोकगीत होने तथा लोकहृदय की सामूहिक चेतना से उद्भूत होने के कारण साधारणीकरण की अपूर्व क्षमता रखते हैं"[3]।

लोकगीतों में रस की स्थिति मान्य है पर उसे शास्त्रीय दृष्टि से काव्य की भांति विवेचित नहीं किया जा सकता ।

1- हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1: ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी, पृष्ठ-571, सं0 2020·

2- वही

3- गढ़वाली लोकगीत: एक सांस्कृतिक अध्ययन-डा0 गोविन्द चातक राधाकृष्ण प्रकाशन-1968, पृष्ठ- 325 पर फुटनोट ।

"भाव साम्य को दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि सृष्टि के प्रत्येक मानव की मूलभावनाएँ एक ही हैं। उसका हृदय सर्वत्र एकसा है और समस्त मानव के हृदय में सुख-दुख, आशा-निराशा, क्रोध, घृणा, ममता आदि की भावनाएँ आलोड़ित और विलोड़ित होती है। ममता की ये प्रवृत्तियाँ तो लोकगीतों में और भी अधिक मुखरित होती रही है। यही कारण है कि सभी देशों के लोकगीतों में मूलभावों की समानता पाई जाती है"[1]। लोकगीतों में वर्णित ~~लोकमानस के~~ दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, पारिवारिक एवं सामाजिक भावों में लोकजीवन की शाश्वत अभिव्यक्ति की उद्भावना इस प्रकार हुई है।

लोकगीतों में दार्शनिक भाव-

प्राकृतिक उपरणों के प्रति आदि मानव के मन में भय-विस्मय मिश्रित श्रद्धा-भावों का उदय हुआ। प्रकृति के रहस्यों को जानने हेतु उसने रचनाएँ की। उनका चित्रण किया और उनकी उपासना में गीत गाये। प्रकृति के विराट रूप के दर्शन किये तथा अज्ञात, अनन्त शक्ति के अस्तित्व के आधार पर उसने दार्शनिक गीतों की रचना की। यद्यपि दर्शन के मूल में मस्तिष्क और लोकगीत के मूल में हृदय पक्ष प्रबल होता है तथापि लोकगीतों में दर्शन जैसे नीरस गहन विषय की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। लोक गीतों में व्याप्त दार्शनिक भाव भी सरस और अनूठे हो गये हैं। दार्शनिक गीतों में बाह्यजगत से सम्बन्ध विच्छेद की चेतावनी जनसाधारण के लिये व्यावहारिक और स्पष्ट होती है। जनसामान्य में दार्शनिक भावों के निरूपण द्वारा अज्ञात शक्ति की ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया गया है। संसार की स्वार्थप्रवृत्ति के प्रति व्यक्ति को निम्न दार्शनिक भावों द्वारा चेतावनी दी जा रही है-

> कलमुआ नयना में शीशा लगाऊँ
> जकरहिं हिया परमात्मा बसय,
> से कोना रन बन भरमाय
> कलमुआ नयना में शीशा लगाऊँ।

उक्त मैथिली लोकगीत में परमात्मा को बाह्य जगत में नहीं बल्कि अपने ज्ञान रूपी शीशे द्वारा अन्तरतम में देखने का सन्देश है।

इसी भावना से ओत प्रोत एक बुन्देली लोकगीत भी देखिये-

> जग में हरि को नाम पियारो रे।
> कंकर चुन-चुन महल बनायो पत्थर जोर दिवाला रे।
> चार खूंट में दियना बारे, बिन दीपक उजयारा रे।

1- मैथिली लोकगीतों का अध्ययन-डॉ० तेजनारायण लाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-पृष्ठ-130।

निम्न भोजपुरी लोकगीत में सांसारिक आकस्मिक परिवर्तन को उपमा तम्बू गिराने से इस प्रकार की है-

> तम्बुआ गिराई कहाँ जइबो हो कहाँ आपन ठेकान ।
> काहे के लगवल बबुरिया हो लगवत तू आम ।
> अमिरित करत भोजनियाँ हो भजत हरिनाम"[1]।।
> प्रेम बाग नहीं बोरे हो प्रेम न हाट बिकाय ।
> बिना प्रेम के मनुवा हो जस अँधियरिया रात"[2]।।
> प्रेम नगर की डगरिया हो होरा रतन बिकाय ।
> चतुर चतुर सौदा करि गये हो मूरख ठाढ पछिताय"[3]।

पूर्वी लोक गीत की दार्शनिक भावों की विशादता का चित्रण इस प्रकार है-

> कल कल री गोरिया, पी के नगरिया, नदिया किनारे मोरा गांव
> गंगा से जमुना का डोंडरे मिलनवाँ मोल गगन तरे मोरा ठाँव ।

उपर्युक्त लोकगीतों में भारतीय दर्शन दृष्टव्य है । साधारण गार्हस्थ जीवन में दार्शनिक भावों की अभिव्यक्ति हृदय को हिला देने की शक्ति रखती है । इन गीतों का स्तर जनसाधारण के स्तर के समकक्ष रहता है जिसमें हृदय पक्ष निरन्तर स्पन्दित ह रहता है । यही लोकगीतों के दर्शनिक भावों की विशेषता है ।

लोकगीतों में मनोवैज्ञानिक भाव-

लोकगीतों का मनोवैज्ञानिक आधार होना सुनिश्चित है । उनमें करुण क्रन्दन, निराशावस्था, अन्तर्वेदना, अकुलाहट तथा ग्लानि आदि मनोभावों का चित्रण मार्मिक ढंग से हुआ है । यही कारण है कि लोकगीतों में अभिव्यक्त शाश्वत मानव भावनाओं में अनन्तत्व की अनुभूति होती है । उनमें निहित मानव मन की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ, भावात्मक एकता एवं साम्य के कारण सार्वजनिक बन जाती हैं । यह मनोवैज्ञानिक तत्वों का प्रतिफल ही है कि मानव मन की सम्पूर्ण मनोदशाओं के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव उसी प्रकार आन्दोलित होते हैं-जैसे एक व्यक्ति के । प्रेम में अन्तर्मुक्त शंकाओं, सान्त्वनाओं और आस्थाओं की पृष्ठभूमि मनोवैज्ञानिक होने के कारण सहजता से हृदय में घर कर जाती है । उसी प्रकार लोकगीतों में असन्तोष और कुण्ठाओं को आध्यात्मिक पुट देने का प्रयास किया गया है ।

निम्न मैथिली लोकगीत में राधा द्वारा कृष्ण को आंचल में बाँधकर रखने की मनोवैज्ञानिक सूझ का चित्रण देखिये-

> जो मैं जनितों पिया माधोपुर जयता,
> बाँधितों मैं रेशम डोर आँचे सीकिया ।

रेशम बधनमा टूटिप फाटि जइलई,
बाधिनो मैं अंबरा लगाय, आहे सखिया ।
अबंरा के फारि-फारि कगदा बनइलों,
लिखिलों मैं पिया के सन्देशा आहे सखिया ।
काहे कुले लिखितो कुलक कुलालिया,
लिखे मैं पिया क वियोग, आहे सखिया ।

लोकगीतों में" मनोवैज्ञानिक स्तर पर मानव मन की विभिन्न परतें खोल कर रख दी गई हैं"[1] । विश्व के किसी भी कोने में रहने वाले मानव हृदय की मूल भावनाएँ एक जैसी होने के कारण लोकगीतों में भावसाम्य पाया जाता है । प्रत्येक प्रान्त के लोकगीतों में वहाँ के जन-जीवन की निगूढ़ आत्मा मुखरित होती है ।

लोकगीतों में सामाजिक एवं पारिवारिक भाव-

लोकगीत समाज से प्रेरणा पाकर अनुप्राणित होते हैं । सामाजिक परिस्थितियों में अन्तर आने से सुख-दुख की अभिव्यक्ति में भी अन्तर आ जाती है । कठोर सामाजिक बंधनों के वहन से कुण्ठा, व्यंग्य कटूक्तियाँ और उपेक्षा आदि के भाव लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त होते है । माता-पिता, बहिन-भाई, सास-ससुर, ननद-भौजाई तथा पति-पत्नी आदि के माधुर्य-सौन्दर्य युक्त पवित्र भावों से सम्बन्धित लोकगीत हृदय को प्रभावित करते है । प्रत्येक प्रान्त के लोकगीतों में प्राचीनतम भारतीय संस्कृति, सुन्दरतम आदर्श और मर्यादा सुरक्षित है । अन्याय निष्ठुरता, उत्पीड़न आदि विषमतापूर्ण सामाजिक भावों के साथ-साथ उदारता, सहानुभूति, प्रेम, सेवा आदि उदात्त सामाजिक भावों का भी निरूपण लोकगीतों में हुआ है । सामाजिक एवं पारिवारिक भाव-जन्मगीत, सोहर और त्योहार आदि गीतों द्वारा व्यक्त होते हैं । पशु-पक्षियों को सम्बोधित गीतों द्वारा जीवन में शक्ति, धैर्य, आशा आदि मानवीय भावनाओं का प्रतिबिम्ब देखने में सरलता होती है । सन्तोष, त्याग कर्त्तव्य तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना द्वारा निम्न लोकगीत में सामाजिक, पारिवारिक सुखशान्ति के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है-

जाव लली तुम फलियो फूलियो,
सदा सुहागन रहियो मोरे लाल ।
एक बात हम तुम से कैत है,
चित्त धर सुनतो जइयो मोरे लाल ।
सास ससुर की सेवा करियो ।
पति की पूजा करियो मोरे लाल ।

1- छत्तीसगढ़ी लोकजीवन और लोकसाहित्य का अध्ययन-डॉ0 शकुन्तला शर्मा, रचना प्रकाशन, 45-ए, खुल्दाबाद, इलाहाबाद, पृष्ठ-195.

देवरानो,जिठानो से हिलमिल रह्यो,
ननदी से नाजुक रह्यो मोरे लाल ।
जो कछु पैदा करके ले लावे,
उतने में गुजर करयो मोरे लाल ।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोकगीत लोक-जीवन के प्राण है, इनके बिना लोकजीवन अधूरा है । " यदि हम सभी प्रान्तों के लोकगीतों को भाषा,छन्द,शैली आदि के बाह्यरूप को हटाकर उनकी आन्तरिक भावधाराओं का तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक अध्ययन करते हैं तो हमें उनकी तलहटी में सामूहिक चेतना और प्रेरणा दृष्टिगोचर होती है जो कि मानव के भावों और क्रिया कलापों में अभिव्यक्ति है । इतना तो अवश्य है कि विशेष परिस्थितियों के कारण कुछ विशेष स्थानों में यत्किंचित भाव साम्य में अन्तर आ जाता है जिसमें उनकी अपनी भौगोलिक और सामाजिक विशेषतायें सम्मिलित रहती है । भावसाम्य ही राष्ट्रीयता का आधारशिला है"[1]।

कवि वर्ड्सवर्थ ने भी भाव को काव्य के प्राण की संज्ञा दी है- Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings; अर्थात् " स्वतः उमड़ने वाले भावों को तीव्र उमंग ही कविता है ।"

भक्ति-

अर्थ एवं परिभाषा-व्युत्पत्ति एवं अर्थ की दृष्टि से कोशकारों के अनुसार -"भक्ति" शब्द "भज्" धातु में "क्तिन" प्रत्यय लगने से बना है । भज् धातु के- सेवा, विभाग,गौणवृत्तिभागी,अनुराग,आराधना,श्रद्धा आदि अनेक अर्थ है ।" जिस प्रकार भक्ति का आरम्भिक व्युत्पत्यर्थ सेवा आगे चलकर "प्रेमपूर्वक देव सेवा" के अर्थ में सीमित हो गया, उसी प्रकार "उपासना" का मूल अर्थ "समीप बैठना" भी कालान्तर में देवता के समीप बैठने और भजन करने के अर्थ में सीमित एवं परिवर्तित हो गया। संहिता युग में ही "भज्" और " उप + आस " पूजन करने के अर्थ में पर्याय हो चले थे"[2]।

संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में भक्ति के आराधना,सेवा,भजन,विभाग, विश्वास,उपचार,आश्रय लेना,आश्रित होना,आराध्य देवता का नाम जपना तथा उसका बारम्बार स्मरण और ध्यान करना आदि अर्थ दिये गये है"[3]।

"ईश्वर के प्रति परा अनुरक्ति ही भक्ति है"[4] ।

भक्ति रागात्मिका वृत्ति है"[5]। " धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है ।[6]""यदि ज्ञान बोध वृत्ति है, योग तप वृत्ति है, कर्म श्रमवृत्ति है तो भक्ति रागवृत्ति है । "श्री गर्ग के अनुसार "कथादि में अनुराग होना ही भक्ति है"[7]

1- मैथिली लोकगीतों का अध्ययन-डॉ0 तेजनारायण लाल:विनोद पुस्तक मंदिर आगरा:पृष्ठ-130.
2- "तुलसी दर्शन मीमांसा"- डॉ0 उदयभानुसिंह: पृष्ठ-259.
3- तुलसी के भक्त्यात्मक गीत-डॉ0 बलदेव कुमार,पृष्ठ-25.
4- "सा परानुरक्तिरीश्वरे- शाण्डिल्य भक्तिसूत्र-महर्षि शाण्डिल्य,1/1/2.
5- गोस्वामी तुलसीदास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,पृष्ठ-9.
6- वही, पृष्ठ-176.
7- "कथादिष्विति गर्गः:- नारद भक्ति सूत्र,17.

आचार्य रामानुज के अनुसार-"सतत ध्यान ही भक्ति है"[1]। नारद के मत से "भक्ति परम प्रेम रूप वाली है"[2]। स्वामी विवेकानन्द के मत से " निष्कपट भाव से ईश्वर को खोज करना भक्ति है"[3] । डा० गोपीनाथ कविराज के मत से " भक्ति ह्लादिनी शक्ति की एक विशेष वृत्ति है"[4]। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार " श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति"[5] ।

इस प्रकार हम कह सकते है कि, सख्य,दास्य,वात्सल्य,माधुर्य तथा शान्त आदि समन्वित भाव से अपने आपको (सम्पूर्ण रूप से) आराध्य के प्रति समर्पित कर देना ही भक्ति है ।

लोकगीतों में भक्तिभावना-

भक्ति भावना से पूर्ण लोकगीतों में अनेक धार्मिक विचारधाराओं का मिश्रण मिलता है । कामनाओं की पूर्ति हेतु लोक में देवताओं के महात्म्य सम्बन्धी लोकगीत गाये जाते है । भक्ति-भावनामय लोकगीतों में एक ओर जादू-टोना, तंत्र-मंत्र,अन्धविश्वास,चमत्कार,प्रकृति पूजा,जड़-जन्तु पूजा,नाग,यक्ष,अप्सराओं, मातृकाओं की मनौती और वैदिक ग्रामीण देवताओं की पूजन की प्रथा है तो दूसरी ओर पौराणिक चरित्रों के आधार पर निर्मित लोकगीत भी मिलते है जिनमें राम-कृष्ण,शिव,ब्रह्मा,विष्णु,सीता,राधा,पार्वती,सरस्वती,लक्ष्मी आदि के उल्लेख निहित है । इन ~~समन्विष्ट~~ भक्त्यात्मक गीतों में हिन्दू संस्कार और प्राचीन भक्ति के तत्त्व समाविष्ट हैं । व्रत,त्योहार आदि के अवसर पर भी ईश्वर महत्ता सम्बन्धी लोकगीतों का गायन होता है । देवी-देवताओं की स्तुति-वन्दना सम्बन्धी लोकगीतों में भक्ति का उद्रेक,ऐहिक-जीवन की निस्सारता और पारलौकिक जीवन की महत्ता वर्णित होती है ।

भक्ति भाव से आत्मविभोर हो भक्त जब भगवान के प्रति आत्म-समर्पण कर देता है तब उसे शान्ति और शक्ति की प्राप्ति होती है । कभी भक्त अपने कृत्यों पर ग्लानि करता है और तो कभी परिताप,तो कभी स्वयं को ही धिक्कारने लगता है । इसी आशय के निम्न लोकगीतों में भक्तों के उद्गार देखिये-

हे हरि मों से पतित उबारो ।
जो हरि मो से पतित नहिं तारो स्वर्गलोक रैहे न्यारो ।
भक्ति करे सें सब कोउ तारे, का बुड़ये नाव तुम्हारो ।। हे हरि०।।
बिना भक्ति प्रभु मोय जो तारो, तब जानौं नाव तुम्हारो ।
और पतित तुम अगनित तारे, अब को मोय जो तारो ।
बिन्ती करौं तुमरी भगवन्,मोरी ओर निहारो ।। हे हरि० ।।

1- स्नेहपूर्वमनुध्यान भक्तिरित्युच्यते बुधैः,गीता-7/1 पर रामानुज भाष्य
2- सा त्वस्मिन् परमप्रेम रूपा, नारद भक्ति सूत्र-2.
3- भक्ति-स्वामी विवेकानन्द,पृष्ठ-1,प्रथम संस्करण-सं0 1980.
4- कल्याण-भक्तिरहस्य-हिन्दू संस्कृति अंक,24/1,पृष्ठ-437.
5- चिन्तामणि भाग-1,पृष्ठ-32.

मना रे तेने राम न जानी रे ।
जैसो मोती ओस को रे तैसोई जो संसार ।
देखत में तो झिलमिली, जलत न लागी बार ।। मना रे0 ।।
सोने को गढ़ लंका बनाई सोने को दरबार ।
रत्ती भर सोनो ना मिलो रावण चलती बार ।। मना रे0 ।।

x x x

ओस बिन्दु के समान क्षणभंगुर संसार में मन को मुग्ध न होने देने के लिये चेतावनी दी है-

अरजी हमारी प्रभु मरजी तुम्हारी है ।
नरसिंह के नाम पे लिखाइ भारी है ।।
हम कहें प्रभु वह शिला से भारी है ।
काहे के कारण तुमने रूप धारण कियो ।
काहे कारण तुमने हिरणाकुश मारयो है ।। अरजी0 ।।
भक्ति के कारण तुमने अवतार लियो है ।
भक्त कारण तुमने हिरणाकुश मारयो है ।। अरजी0 ।।
कहत कबीर सुनो भई साधो ।
तारने की बिरियाँ प्रभु अब की हमारी है ।। अरजी0 ।।

निम्न भोजपुरी लोकगीत में एक भक्त की सहायता हेतु भगवान से प्रार्थना-

सीता राम, लक्षुमन, भरत, सतुरघन: अउरी हनुमान महावीरा ।
जय जय नारायण त्रिभुवन स्वामी: हर देहिया के दुख पीरा ।।2।।
जरत अगिनि प्रहलाद उबरले: गनिका पढ़ावत कीरा ।
मध्य सभा में द्रोपदी प्रन राखले: हरत दुसासन चीरा ।।2।।
भारत में भरदूल के अण्डा: घड़ा तोरि के छिपाई ।
गाह मारि गजराज उबरले : संकट होई न सहाई ।।3।।

निम्न मालवी के गीत में सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कबीर के वचनों का आश्रय लिया गया-

आप अलग हुई बैठा बूंद अमी रस छूटा
एक बूंद का सकल पसारा पुरुष नर फूटा
अवधू मन बिन करम ना होता
आदी अंग नारी को कहिये आदी सतगुरु नर को
माता पिता का मेल मिलिया करो करम को पूजा
पैला पिता एकला होता पूत जन्म्या दूजा, अवधूमन
धरती आसमान कुछ बिब नहीं था, तभी आपणा दोई कुणा था
सातो सायर आठ कोड़ी परबत, नव कोड़ी नाग नहीं था

आठ रे बाहर कलमति नहीं थी, नह था नखत तारा
बारा मेघ बन्दर नहीं होता, बरसन वाला नह कुण था
बरमा नह था बिष्णु नह था, नह था शंकर भोला
कहै कबीर मम्म नहीं होता, माझा वाला नह कुण था

प्राय: सगुण, निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति के लोकगीत प्राप्त होते हैं। सगुण भक्ति भावना प्रेरित भजन और लोकगीतों का सभी जनपदों में बाहुल्य है। इनमें अवतार लीलाओं का उल्लेख मिलता है। सगुण-भक्ति के लोकगीतों में दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य आदि नवधाभक्ति के स्वरूप की झांकी दृष्टिगोचर होती है। इन गीतों का प्रतिपाद्य विषय अटूट धार्मिक विश्वास, श्रद्धा भावना लोकमंगल की भावना और बीते समय में ईश्वर स्मरण न करने का पश्चाताप भी है।

कबीर आदि सन्तों से प्रभावित निर्गुण भक्ति के गीतों का संख्या कम है। इनमें कहीं-कहीं नीति वचनों की भरमार, कहीं रहस्यवाद का संकेत है। तथा कहीं द्वैत-अद्वैत भावनाओं का समावेश हो गया है। दर्शन और अध्यात्म सम्बन्धी ज्ञान सामान्य जन की समझ से परे है। लेकिन इन्होंने सन्तों के जीव, ब्रह्म सम्बन्धी प्रचलित पदों को लोकगीतों द्वारा स्थानीय भाषान्तर से अपना लिया है। निर्गुण भक्ति की निष्काम भावना से प्रेरित इन लोकगीतों में दया धर्म, परोपकार, गुरु-भक्ति का तथा जीव-जगत तथा सांसारिक माया जाल से मुक्ति का सन्देश है।

ज्ञान-

अर्थ एवं परिभाषा-ज्ञान का अर्थ है सम्पूर्ण विवेक अर्थात सद् और असद् को पहचानते हुए सद् में लीन होना"[1] वेद[2] उपनिषद[3] तथा गीता[4] में इसी महत्त्व की विशद विवेचना हुई है। भक्ताचार्य कहते हैं कि-

"अपरा भक्ति ज्ञान का साधन है" परमात्मा का विदेश ही ज्ञान है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के टीकाकार स्वप्नेश्वर का मत है कि-" भक्ति का निकटतम साधन ज्ञान है"[5]।

1- विनय पत्रिका में प्रपत्तिवाद-डॉ० विजय शंकर मिश्र, पृष्ठ-12.

2- " ऋते ज्ञानान्न मुक्ति:" नान्य: पन्था विद्यते ऽयनाय" ।

3- " आत्मैवेद सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेव एवं विजानन्नात्मरति आत्म क्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्द: स स्वराड् भवति"- छान्दोग्योपनिषद, 7/25/2, अर्थात जो भी है वह सब परमात्मा है जो ऐसा देखता, मानता, समझता है, अर्थात परमात्मा में, परम अनुराग परमात्मा में ही क्रीड़ा उन्हीं के संयोग का सुख तथा उन्हीं में आनन्द का अनुभाव करता करता हुआ परमात्मा स्वरूप हो जाता है।

4- [क] नहीं ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते, 4/38.
[ख] तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्ति विशिष्यते।
[ग] प्रियो हि ज्ञानिनो ऽत्यर्थमहं स च मम प्रिय:, गीता-7/17.
[घ] ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्, 7/18.

5- समान्तरप्रधान ज्ञान-कल्याण, भक्ति अंक, पृष्ठ 236.

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के दूसरे टीकाकार नारायणतीर्थ का मत है कि- " ज्ञान भक्ति का अन्तरंग साधन है"[1]।

भक्ति मकरन्द"[2] एवं भक्ति चन्द्रिका"[3] में कहा गया है कि-भक्ति आत्म-ज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

" तात्त्विक दृष्टि से भक्ति और ज्ञान उसी प्रकार परस्पर उपकारक है, जैसे वैराग्य और तत्व ज्ञान। तत्व ज्ञान से वैराग्य प्रबल होता है तथा प्रबल वैराग्य से ज्ञान निष्ठा बढ़ती है।"[4] ज्ञान दो प्रकार का होता है आत्मा का ज्ञान एवं परमात्मा का ज्ञान। आत्म ज्ञान से ही परमात्मा बोध होता है"[5]। विवेक के आधार पर कहा जा सकता है कि-

1- आत्म स्वरूप, आत्मदर्शन एवं आत्म उद्धार की जिज्ञासु प्रवृत्ति ही ज्ञान है।
2- आत्म चिन्तन के बिना ज्ञान सम्भव नहीं।
3- निर्विकारी आत्मा में सद्-असद् को पहचानने की निर्णय शक्ति होती है।

लोकगीतों में ज्ञान-

लोकगीतों में संत कबीर, तुलसी और मीरा के भजनों एवं उद्देश्यों का व्यापक प्रभाव प्रसारित हुआ है। इनके द्वारा प्रतिपादित जनसामान्य के सरलपदों में ज्ञान, भक्ति, उपासना के दार्शनिक सिद्धान्त सन्निहित है। साधारण जनता ने शास्त्रीय पक्ष की गहन उपेक्षा की और इनके द्वारा रचित सरल पदों को अपनाकर इन्हें लोकगीतों में उतारने का प्रयास ही नहीं किया है बल्कि उनके भावों को लोकगीतों की परम्परा में आज तक सुरक्षित भी रखा है। इन लोकगीतों में नीति, उपदेश युग पाखण्ड, सांसारिक अस्थिरता, जीवन की क्षणभंगुरता और यौवन की गर्वीली प्रकृति के तिरस्कार हेतु व्यंग्य रूप से चेतावनी दी गई है-

> मेरो कहो मान लो ज्ञान बिना भजन भगवान,
> जगत में कोऊ ना अपनों जान।
> दो-दो दीपक"[6] धरे मंदिर"[7] में, झिलोनार[8] की चेहरो।
> पाछें फिर के देख लो हो गओ घोर अन्धेरो। मेरो०।।
> पांच चोरदस अन्दर उतरे लओ नगर तेरो घेरो।
> पकड़ो चोर चढ़ा देव फाँसी, घर-घर फिरे ढिंढोरो।। मेरो०।।

1- तु शान्तरङ्गसाधनं ज्ञानम्-कल्याण, भक्ति अंक-पृष्ठ-7/17.
2- ज्ञान चैतन्य मात्र व्यवहरति जनो ज्ञानवृत्ती तु भक्त्या।
प्रेमाख्यानन्दमात्र व्यवहरति तथा प्रेम वृत्ती च भक्त्या।।
3- आत्मा वा अरे दृष्टव्य-----इत्यादि वेदान्त वाक्यैः भक्त्यर्थमेव श्रवणादिकं विधीयते न ज्ञानप्राधान्येन-बृहदारण्यक,2/4/5,[भक्तिचन्द्रिका पृष्ठ-84] काशी संस्कृत ग्रंथ माला।
4- कल्याण भक्ति अंक- स्वामी चिदानन्द जी: पृष्ठ-68.
5- "ज्ञानानन्दमयः स्वात्मा शेषो हि परमात्मनः"-कल्याण-उपासना अंक के पृष्ठ-598 के फुटनोट पर उद्धरित।
6- माया एवं मोह।
7- हृदय [8] जीव [9] काम, क्रोध, मोह, लोभ और झूठा अहंकार।

भाई बंधु तेरो कुटुम कबोलो, फूले देवें छोरो ।
एक दिना तोय जंगल ले के, मूड फोड़ेंगे तेरो ।। मेरो० ।।
टूटी खटिया, फटी गुदड़िया, उस बारवी देय भुतेरो ।
एक दिना भूत पेली आई, परे बगा दें डेरो ।। मेरो० ।।
निबड़ा तेल, खतम हुई बाती, फलो उठा लो डेरो ।
अब का सोच करे रे मनुआ, हो ठाओ रैन बसेरो ।। मेरो० ।।

इस संसार में ईश्वर की भक्ति अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में सच्चे आत्म-ज्ञान के सिवा कुछ नहीं है । अज्ञान-जन्य स्थिति ईश्वर तक पहुँचने में बाधक है । निम्न लोकगीत में आत्म-भर्त्सना, आत्म निन्दा, आत्म व्यथा की विकलता और और भटके पागल मन को दुर्गुणों का परित्याग कर देवतुल्य बन जाने का उपदेश दिया गया है-

मनुआ राम नाम जस गइये ।
भरी सभा में बइये, जहँ राम नाम जस गइये ।
साधु मिले ज्ञान की सुनिये, ज्ञान में ज्ञान मिलइये ।।
मूरख मिले, मौन हो रहिये, ऊसर बीज न बइये ।
काहे की कूंडी, काहे को सोटा, काहे के पल्ले छनइये ।।
रसना ले तू रामगुण गा ले, बिमल बिमल जस गइये ।
नेम की कूंडी, धर्म को सोटा, प्रेम के पल्ले छनइये ।।
रसना ले तू रामगुण गा ले, बिमल बिमल जस पइये ।
तन-मन-धन का लोभ छोड़ दे, लोक लाज बिसरइये ।।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह इन सबको दूर बहइये ।
मनुआ राम नाम जस गइये ।।

* * *

आये री मेरे ज्ञान गणपति आये ।
गणपति आये मेरे मस्तक पे बैठे रामा
मैं बलिहारी रामा बड़े बड़े सीस नवाये । आये० ।।

ज्ञानोदय होने पर समस्त इन्द्रियाँ[1] सत्कार्यों में निमग्न हो जाती हैं ।
माया-जन्य अज्ञान के वशीभूत संसार-सागर में भटकना पड़ता है । सांसारिक
मायाजाल के प्रति प्रतिकार की भावना ज्ञान के आवरण में व्यंग्यरूप में अभि-
-व्यक्त हुई है । ज्ञानात्मक लोकगीतों में आध्यात्मिक तत्वों को एवं शान्त-
रस को उद्भासना हुई है । पर इनमें जनमानस अपने सारल्य को छिपा नहीं पाया
है-

लख चौरासी भटकत भटकत अब के मौसम आपा रे ।
अब के मौसम चूकि जाय तो कहीं ठौर नहीं पाया रे ।

1- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पाँच कर्मेन्द्रियाँ

2- फेंक देंगे ।

यो संसार हाट को मैलो रामा लखआवत लख जावत है ।
यो संसार ओले को मोती रामा पवन लगे ढुल जावत है ।
यो संसार चोर को झाड़ो माया जाल रचावत है ।
यो संसार माया दौलत को रामा चोर पड़े लूट जावत है ।

x x x

काहे को मौर बनो, कोइ को मौठिया ।
केले के सजी बरात, कौन को पौरिया ।
ज्ञान को मौर बना के, क्षमा को मौरिया ।
समरथ सजी बरात, अकल को पौरिया ।

x x x

चढ़ो-चढ़ायो जाय टिपारो गुरु ज्ञान को ।
ज्ञान में ध्यान मिलाय हिये हरनाम को ।।

x x x

ज्ञान बड़ो लगो रहै, बरसे प्रेम हुलास ।
रजधानी रघुनाथ की जो हमसे बरनी न जाय ।।

x x x

ज्ञान हुआ माया हर लीनो, कब बलम तुम्हारा ।
आया है सो अमर नहीं कोई, रघुवर करो उबारा ।।

x x x

ज्ञान हुआ चरणों मे लौटो, सुमर बाल को तारा ।
तुलसी दास आस रघुवर के हे गरब करो सो हारा ।।

ईश्वर तक पहुँचने के लिये प्रत्येक जिज्ञासु को ज्ञानी की आवश्यकता होती है । सद्गुरु ही आत्मस्वरूप की वास्तविकता का ज्ञान प्रदान करता है । उसके द्वारा प्रदत्त ज्ञान की ज्योति अनन्त, अपार और ब्रह्म समान है । लोकगीतों में गुरु की महत्ता का बखान है-

लाल लाल तू कई करे ।
सबके पल्ले लाल
मेरे सतगुरु ने दीनो बताय
लालो मेरे लाल को
लाल बड़ो बौकन ले पड़ो"[1]।

x x x

सतगुरु ऐसा जानता रे, जैसे मणिकार झाड़ रे,
घोटत घोटत रंग चढ़े, जैसे दीन दयाल"[2]।

1- मालवी लोकगीत: एक विवेचनात्मक अध्ययन- डॉ0 चिन्तामणि उपाध्याय मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1964, पृष्ठ-301।

2- वही-

श्रुति कहती है- "तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्" तत्वज्ञान हेतु गुरु की शरण जाना चाहिये। प्रगाढ़ अज्ञान-निद्रा से गुरु ही जगाने में समर्थ है। ज्ञान बिना ईश्वर के दर्शन असम्भव हैं। लोकगीतों में ज्ञान की महिमा का वर्णन श्रद्धालु एवं धार्मिक जनता की प्रवृत्ति को विश्लेषित करता है। लोकगीत ज्ञान के वाहक और सत्य के अक्षय भण्डार होते हैं। सत्य, ज्ञान और नीतिपरक उक्तियाँ लोक गीतों की सम्पत्ति है। जनसाधारण का जीवन दर्शन ज्ञानात्मक की अपेक्षा भावात्मक होता है। अतः लोकगीतों में उच्च ज्ञान या दर्शन शास्त्र की गहराई न होकर जीवन का सारल्य अभिव्यक्त है।

वैराग्य-

अर्थ परिभाषा- "संसार में व्याप्त जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि आदि दुःख रूप दोषों को देखसमझकर उनसे विरक्त होना वैराग्य है"[1]। "कृष्ण के अतिरिक्त सभी विषयों में वैराग्य हुए बिना भक्ति सम्भव नहीं"[2]। वैराग्यहीन को दुःखशून्य सुख प्राप्त नहीं होता"[3]। वैराग्य सम्पन्न पुरुष द्वारा भगवान के प्रति परमानुराग का बोध ही मोक्ष प्राप्ति है। गीता में कहा गया है कि "दृढ़ वैराग्य से मोक्ष प्राप्ति होती है"[4]।

लोकगीतों में वैराग्य भावना-

जीवन जगत के दुःख, क्लेशों और मरण आदि के अवसर पर वैराग्य भावना का शान्त वातावरण बन जाता है। मृत्यु गीतों में निहित भावना के कारण एवं मृत्योपरान्त परब्रह्म के निकट ही गाये जाने के कारण उन्हें निरगुनी भजन की संज्ञा दी गई है।

लोकगीतों में एक ओर पुनर्जन्म का विश्वास, आत्मा का अमरत्व जीवन के निरन्तर प्रवाह के प्रति आस्था व्यक्त हुई है तो दूसरी ओर संसार की नश्वरता, जीवन की क्षणभंगुरता और मृगतृष्णा के प्रति वैराग्य भावना भी जाग्रत हुए हैं-

> चलो रे मन यहाँ न रहना
> तीन खूँट[5] की साड़ी बनाई ऊपर बूँद तारा
> चलो रे मन यह देस है विराना
> भाई बंधु तेरा कुटुम्ब कबीला छोड़ अकेले जाना
> अन्न धन के तेरे कोठे भरे हैं तुझे अकेले जाना

सांसारिक बंधन क्षणिक होते हैं। बीते समय के लिये दुःख और पश्चाताप की अग्नि में झुलसे मानव को राम भजन ही शीतलता प्रदान करता है-

> राम भजो मन राम भजो।

1- जन्म मृत्यु जरा व्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्।
2- वैराग्यं प्रथम प्रीतिः श्रीकृष्णेतरवस्तुषु।
3- वैराग्य हीनस्य सुखं नास्ति दुःखविवर्जितम्
क्रमांक-1, 2, 3-कल्याण उपासना अंक, पृष्ठ-600, 1968 वर्ष-42, संख्या-1
4- [क] ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी, गीता-15/4.
[ख] ध्यान योग परो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ।। गीता-18/52.
5- सिर, धड़, पैर

अरे तुम पाछे पछतइहो ।
भजन बिनु उमरि गवंइहो ।
मौत द्वार पै होई है ठाढ़ो ।। राम भजो0।।
का करिहौ तब भैया ।
अरे खाट पकड़ के माता रोवै
बांह पकड़ सगा भैया
लट छिटकाया सुन्दर तिरिया रोवै
जाओ अकेले भैया ।

सांसारिक प्रपंचों से दूर रहकर हृदय में वैराग्य भाव जगाने में निम्न गीत महत्त्वपूर्ण है-

का देखके मन भव हे दिवानो का देख कै
मानुष देह देख जिन भूलो, एक दिना माटी हो जाने
अरे जा देहिया कागद की पुड़िया बूंद परे गर जाने
जा देहिया को मल-मल धोलो चन्दन तिलक चढ़ा कै
ओई देहिया पै कागा भिनके देखत लोग घिना है
का देख कै मन भव हे दिवानो, का देख कै ।

पंचतत्व की वैराग्यपूर्ण भावना से निहित निम्न गीतांश की पंक्तियाँ दृष्टव्य है-

" धरती केरि पालकी,बदरे केर ओहार,
चन्दे केरि बैदो मगावा, गगनै हम जाब" ।

जीव-जगत के प्रति वैराग्य भावना एवं चेतावनी निम्न गीत में विद्यमान है-

या चेला के मत करो गुमाना,बचावन वाला कोई नहीं
दे ले,ले ले, कर ले मेल मिलासा
इक दिन मरि जइहै छाती में जमै है घासा
या जग मां नहि भरोसो तन को
या चोला को हरे भगवाना-

निम्न गीत में सांसारिक माया मोह में रमे व्यक्ति को राग पक्ष से विराग पक्ष की ओर जाने हेतु सचेत करने का प्रयास बड़ा रोचक है-

ऐसी दुनिया को क्या करना ।
जिसमें मरना तो मरना है, जीना भी मरना ।।
आज किसी का कुछ बिगड़ना, कल कोई, आ सुधरना ।
यही कुछ है जिसमें प्रतिदिन, चढ़ना और उतरना ।।
माता,पिता,पुत्र,पत्नी का, व्यर्थ भरोसा धरना ।
कोई ना किसी का, जैसा करना वैसा भरना ।।

यदि तू चाहे कठिन मोह भ्रम,शोक सिन्धु से तरना ।
तो मन भ्रमर श्याम पद पंकज,नौका बीच विचरना ।।
उसको आवागमन,जन्म मरणादिक से क्या डरना ।
जिसके मुख से झरता है, हरिनाम का निर्मल झरना ।।

x x x

नइयाँ ठीक जिन्दगानी की, जो तन करो पिण्ड पानी को
बोला और दूसरो नइयाँ मानुष की सानी को
जोगी,जती,तपी सन्यासी मर गए ज्ञानी को
ईसुर चाय जबे ले लेबे का बस है प्रानी को

x x x

ये जायेगा रे जो तन हम जानी
राजकरम के राजा जैहैं, रूपवन्त सी रानी ।
वेद पढ़न्ते ब्रह्मा जैहैं, नारद मुनि से ज्ञानी ।। ये जायेगा ।।
योगी, तपी,मुनीश्वर जैहैं,उर जैहैं अभिमानी ।
एक समय धरणी चली जैहै, रैहै पवन और पानी ।। ये जायेगा ।।
चार जनो जुर चलीं बजारे, एक से एक सयानी ।
उठ गई हाट भयो न सौदा, मन ही मन पछतानी ।। ये जायेगा ।।
कहत कबीर सुनो भई साधो, जो पथ है कठ्ठानो ।
जोई पथ को जो करे निवारो कोई पथ है निरबाना ।। ये जायेगा ।।

उपर्युक्त वैराग्यपरक लोकगीतों में शान्त रस की उद्भावना हुई है । क्षणभंगुर विश्व में शान्ति की खोज में भटके मानव मन को जीवन में व्याप्त भय, अशान्तता, अस्थिरता देख विरक्ति भावना उत्पन्न होती है तब काम,क्रोध,मोह, लोभ अहंकार आदि से मुक्ति हेतु वह ईश्वर भक्ति का सहारा लेता है ।

महाकवि शेक्सपीयर ने क्षणभंगुर संसार को स्वप्न की छायामात्र कहा है[1]।

---

1. We are such stuffs as dreams are made on.
   And our little life is rounded with our sleep.

चतुर्थ अध्याय

4.0. बुन्देली लोकगीतों में उपासना का स्वरूप एवं लोक प्रचलन के विविध रूप

4.1. शाक्त, शैव एवं वैष्णवोपासना

4.2. क्रीड़ात्मक गीतों में उपासना

4.3. प्रकृति उपासना

4.4 प्रेतोपासना

4.5. संस्कार गीतों में उपासना

4.6. पर्व, व्रत मेले

4.7. अन्य धार्मिक लोकगीत

4.8. बुन्देली लोकगीतों पर आधारित उपासना का समीक्षात्मक विवेचन

बुन्देली लोकगीतों में उपासना का स्वरूप-

बुन्देली लोकगीतों में धार्मिकता के स्वर मुखरित हैं। उनमें विश्व कल्याण की शुभ भावना के चित्र अंकित है। बुन्देलखण्ड में पूजा-पार्वण क्रिया विशेष बहुल बाह्य अनुष्ठानों का बाहुल्य है। लोक उपासना एवं वैदिक उपासना के समन्वय से सकाम क्रिया अनुष्ठानों का प्रचलन है।

ब्रज के समीप होने के कारण बुन्देलखण्ड की संस्कृति में माधुर्योपासना का विशेष लालित्य देखने को मिलता है। यहाँ के गीतों में भगवान कृष्ण का सौन्दर्य, उनकी मुरली के सुहावने स्वर, यमुना की कल-कल ध्वनि, गोचारण के लुभावने दृश्य तथा राधा की रसभरी क्रीड़ायें पूर्ण रूपेण प्रतिबिम्बित हुई हैं।[1]

बुन्देलखण्ड में प्रचलित भजन व लोकगीत सगुणोपासना से प्रेरित और जनमानस में धार्मिक भावों को जागृत करने में सहायक हैं। निर्गुणोपासना के लोकगीतों में सन्तमत का प्रभाव है इनकी संख्या बहुत कम है। राम-कृष्ण, शिव, शक्ति, हनुमान आदि से सम्बन्धित लोकगीत स्त्री-पुरुष दोनों ही गाते हैं। यहाँ प्रत्येक मास के प्रत्येक दिन में कोई न कोई व्रत, त्यौहार सम्पन्न होते हैं। इस अवसर पर सम्बन्धित देवी-देवताओं के अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, नदी, वृक्ष, सर्प, गायमाता एवं तुलसीपूजन के लोकगीत गाये जाते हैं।

बुन्देली लोकगीतों में भारतीय उपासना के मूलतत्व आज तक सुरक्षित हैं। संस्कार सम्बन्धी गीतों में राम, शिव के प्रति एवं पर्व त्यौहार के गीतों में कृष्ण के प्रति आस्था व्यक्त हुई हैं। देवी गीतों में धन-धान्य, पति व पति-पुत्र की मंगलकामना निहित है। बुन्देली लोकगीतों में ईश्वर के प्रति आस्था, विश्वास एवं प्राचीन संस्कृति का निर्वहन बड़ी खूबी से हुआ है। ऐसे गीतों में अंधविश्वास, टोना-टोटका, तंत्र-मंत्रादि का समावेश भी हो गया है। सन्तों ने जीव-ब्रह्म सम्बन्धी धारणा एवं अवतारवाद को लोक भाषा के सरल पदों में प्रचार कर बुन्देली लोकमानस को प्रभावित किया है। अत: तीर्थ यात्रा के गीतों में जीव-जगत सम्बन्धी दर्शन की भी अभिव्यक्ति हुई हैं। ये गीत आत्म निरीक्षण, शुद्धाचरण, माया बन्धन से मुक्ति हेतु प्रेरित करते हैं। यहाँ प्रचलित व्यक्तिगत भजन लोक-जगत, वैराग्य, करुणा एवं निराशा के तथा सामूहिक भजन अर्थ धर्म, काम और मोक्ष के सूचक हैं। राम-कृष्ण, शिव, हनुमान, सीता, राधा, पार्वती तथा अन्य देवी-देवताओं के पूजन, व्रत, मनौती, प्रभात, सन्ध्या और दर्शन के समय सूर, तुलसी, मीरा सगुण समर्थक भजनों को बुन्देली लोक भजनों में रूपान्तरित करके गाया जाता है। प्रसंगानुसार यत्र-तत्र बुन्देलीलोकगीतों में निहित उपासना के स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है अत: यहाँ उसकी पुनरावृत्ति अनुपयुक्त है।

बुन्देली लोक प्रचलन के विविध रूपों का विषयानुसार विभाजन निम्नवत है-

4.1 शाक्त, शैव एवं वैष्णवोपासना:-

1- देवी की अचरी 2- सांगुरिया

1- बुन्देली लोक साहित्य-श्री चन्द्र जैन, पृष्ठ-36: स्मृति प्रकाशन इन्दौर-1973.

3- शंकर जी व गणेश जी के भजन
4- राम-कृष्ण परक गीत
5- कार्तिक स्नान

4.2 क्रीड़ात्मक गीतों में उपासना:-
1- मामुलिया
2- सुआटा [नौरता]
3- टेसू
4- झिंझिया [ढिरिया]

4.3 प्रकृति उपासना:-
1- सूर्य, नदी, वृक्ष एवं तीर्थोपासना

4.4 प्रेतोपासना:-
1- कारसदेव की गोटें
2- हरदौल की गाथा

4.5 संस्कार गीतों में उपासना:-
1- जन्म, विवाह एवं मृत्यु

4.6 पर्व, व्रत मेले-

4.7 अन्य धार्मिक गीत

देवी की अचरी-

"चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्यस्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः"[1]।

ऋग्वेद[2], मार्कण्डेय पुराण, देवी पुराण, देवीभागवत् महाशक्ति तत्व का प्रतिपादन करता है । शक्ति के मुख्य नौ स्वरूप हैं- [1] महाकाली [2] महालक्ष्मी [3] महासरस्वती [4] योगमाया [5] रक्तदन्तिका [6] शाकाम्भरी [7] दुर्गा [8] भ्रामरी [9] चण्डिका ।

बुन्देलखण्ड में शक्ति के उक्त नौ रूपों के अतिरिक्त शीतला, भवानी, कालका जगदम्बा, विन्ध्यवासिनी, संकटा आदि देवियों के नामों का उल्लेख भी बुन्देली अचरियों में मिलता है । यहाँ देवी माँ के अलौकिक शक्ति, शौर्य, गुण तथा विभिन्न रूपों के अनुष्ठानिक गीतों का बाहुल्य है तो साथ ही उसके असुर संहारक एवं दुष्ट दमनकारी रूपों का भी इन गीतों में अभाव नहीं । इन गीतों में जगदम्बा को सर्वशक्तिमान, दिव्य ज्योति तथा सिंह पर सवार बताया गया है । पराक्रमी शूरवीर लंगुरा को उनका सेवक माना गया है ।

देवी की अचरी बुन्देली नर-नारी दोनों ही बड़ी तन्मयता से गाते हैं । पुरुष के देवी गीत [भगतें] कथात्मक तथा स्त्रियों के देवीगीत स्फुट, मुक्तक करुण भावना से परिपूर्ण होते हैं ।

भजन-

बुन्देलखण्ड में देवी उपासना का सर्वोपरि स्थान है । प्रत्येक मांगलिक

1- जो देवी चेतना रूप से सम्पूर्ण जगत को व्याप्त करके स्थित है उनको नमस्कार, उन्हें नमस्कार उनके निमित्त बारम्बार नमस्कार है ।
[दुर्गा सप्तशती-5/78, 79, 80.

2- 1/25/6-ऋग्वेद का वागाम्भृणीय सूक्त सूक्त ।